). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

हि 388

गोपाललाल खन्ना

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

नं. १४५

त्रिभुवन
विश्वविद्यालय
पं. अं. नि. कार्यालय
काठमाडौं

हि. ३८८

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

lepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

अर्थात्

बाबू श्यामसुंदरदासजी लिखित
"हिंदी भाषा और साहित्य" के साहित्य
विभाग का संक्षिप्त रूप

संकलनकर्त्ता
गोपाललाल खन्ना, एम० ए०

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
सन् १९५१

परिवर्धित संस्करण]

[३॥)

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

Printed and Published by K. Mittra at
The Indian Press Ltd., Allahabad.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

अध्यायों की सूची

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

[पृष्ठ १--२०]

दूसरा अध्याय

भिन्न भिन्न परिस्थितियाँ

[पृष्ठ २१—३७]

तीसरा अध्याय

वीरगाथा काल

[पृष्ठ ३८—६३]

चौथा अध्याय

भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी शाखा

[पृष्ठ ६४—७६]

पाँचवाँ अध्याय

प्रेममार्गी भक्ति शाखा

पृष्ठ ७७—९४]

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

छठा अध्याय
रामभक्ति शाखा
[पृष्ठ ९५—११०]

सातवाँ अध्याय
कृष्णभक्ति शाखा
[पृष्ठ १११—१३२]

आठवाँ अध्याय
रीति काल
[पृष्ठ १३३—१४९]

नवाँ अध्याय
आधुनिक काल
पद्य
[पृष्ठ १५०—१७७]

दसवाँ अध्याय
आधुनिक काल
गद्य
[पृष्ठ १७८—२१६]

ग्यारहवाँ अध्याय
हिंदी की व्यापकता
[पृष्ठ २१७—२२३]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

साहित्य की मूल मनोवृत्तियाँ

मनुष्य-मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपने भावों तथा विचारों को दूसरों पर प्रकट करे और स्वयं बड़ी उत्सुकता से दूसरे के भावों और विचारों को सुने और समझे। वह अपनी कल्पना की सहायता से ईश्वर, जीव तथा जगत् के विविध विषयों के संबंध में कितनी ही बातें सोचता है तथा वाणी के द्वारा उन्हें व्यक्त करने की चेष्टा करता है।

साहित्य के मूल में स्थित इन मनोवृत्तियों के अतिरिक्त एक दूसरी प्रवृत्ति भी है जो सभ्य मानव-समाज में सर्वत्र पाई जाती है और जिससे साहित्य में एक अलौकिक चमत्कार तथा मनोहारिता आ जाती है। इसे हम सौंदर्य-प्रियता की भावना कह सकते हैं। सौंदर्य-प्रियता की ही सहायता से मनुष्य अपने उद्गारों में "रस" भर देता है जिससे एक प्रकार के अलौकिक औ अनिर्वचनीय आनंद की उपलब्धि होती है और जिसे

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

साहित्यकारों ने "ब्रह्मानंद-सहोदर" की उपाधि दी है। सौंदर्य-प्रियता की भावना ही शुद्ध साहित्य को एक ओर तो जटिल और नीरस दार्शनिक तत्त्वों से अलग करती तथा दूसरी ओर उसे मानव मात्र के लिये आकर्षक बना देती है। जैसे सब मनुष्यों में मनोवृत्तियों की मात्रा एक सी नहीं होती वैसे ही सौंदर्य-प्रियता की भावना उनमें समान रूप से विकसित नहीं होती; सभ्यता तथा संस्कृति के अनुसार भिन्न भिन्न मनुष्यों में उसके भिन्न भिन्न स्वरूप हो जाते हैं। परंतु इसका यह आशय नहीं कि हम प्रयत्न करके किसी देश अथवा काल के साहित्य में उपर्युक्त भावना की न्यूनता अथवा अधिकता का पता नहीं लगा सकते या उसके विभिन्न स्वरूपों को समझ नहीं सकते।

भावपक्ष तथा कलापक्ष

इस प्रकार एक ओर तो हम अपने भावों, विचारों, आकांक्षाओं तथा कल्पनाओं का अभिव्यंजन करते हैं और दूसरी ओर अपने सौंदर्य-ज्ञान के सहारे उन्हें सुंदरतम बनाते तथा उनमें एक अद्भुत आकर्षण का आविर्भाव करते हैं। इन्हीं दो मूल तत्त्वों के आधार पर साहित्य के दो पक्ष हो जाते हैं जिन्हें हम भावपक्ष तथा कलापक्ष कहते हैं। यद्यपि साहित्य के इन दोनों पक्षों में बड़ा घनिष्ठ संबंध है और दोनों के समुचित संयोग और सामंजस्य से ही साहित्य को स्थायित्व मिलता तथा उसका सच्चा स्वरूप उपस्थित होता है, तथापि साधारण विवेचन के लिये ये दोनों पक्ष अलग अलग माने जा सकते हैं और इन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पर भिन्न भिन्न दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। साहित्य के विकास के साथ उसके दोनों पक्षों का विकास भी होता जाता है, पर उनमें समन्वय नहीं बना रहता।

भावपक्ष

साहित्य के इन दोनों अंगों में से उसके भावात्मक अंग की अपेक्षाकृत प्रधानता मानी जाती है और कलापक्ष को गौड़ स्थान दिया जाता है। सच तो यह है कि साहित्य में भावपक्ष ही सब कुछ है, कलापक्ष उसका सहायक तथा उत्कर्षवर्धक मात्र है। साथ ही भावपक्ष पर विचार करना भी अपेक्षाकृत जटिल तथा दुरूह है; क्योंकि मनुष्य की मनोवृत्तियाँ जटिल तथा दुरूह हुआ करती हैं, उनमें शृंखला तथा नियम ढूँढ़ निकालना सरल काम नहीं होता। मनुष्य के भाव और विचार तथा उसकी कल्पनाएँ भी बड़ी विचित्र तथा अनोखी हुआ करती हैं। साहित्य मनुष्य के इन्हीं विचित्र और अनोखे भावों, विचारों तथा कल्पनाओं आदि का व्यक्त स्वरूप है, अतः उसमें भी मानव-स्वभाव-सुलभ सभी विशेषताएँ होती हैं। साहित्य में जो विचित्रता तथा अनेकरूपता दिखाई देती है उसके मूल में मानव-स्वभाव की विचित्रता तथा अनेकरूपता है। हमारी प्रवृत्ति सदा एक सी नहीं रहती। प्रवृत्तियों की इसी अनेकरूपता के कारण साहित्य में भी अनेकरूपता दिखाई देती है। कविता, नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, निबंध आदि जो साहित्य के विभिन्न अंग हैं और इन मुख्य मुख्य अंगों के भी जो अनेक उपांग हैं, उसका

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

कारण यही है कि मनुष्य की मनोवृत्तियों के भी अनेक अंग और उपांग होते हैं तथा उनकी भी विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं। इन अंगों, उपांगों एवं श्रेणियों के होते हुए भी मानव-स्वभाव के मूल में भावात्मक साम्य होता है, अतएव साहित्य में भी अनेकरूपता के होते हुए भी भावना-मूलक समता दिखाई देती है और इसी समता पर लक्ष्य रखते हुए हम साहित्य के पक्ष का विवेचन करते हैं।

कलापक्ष

जिस प्रकार मनुष्यों में अपने भावों तथा विचारों को व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा होती है उसी प्रकार उन भावों तथा विचारों को सुंदरतम, शृंखलाबद्ध तथा चमत्कार-पूर्ण बनाने की अभिलाषा भी उनमें होती है। यही अभिलाषा साहित्य-कला के मूल में रहती है और इसी की प्रेरणा से स्थूल नीरस तथा विशृंखल विचारों को सूक्ष्म, सरस और शृंखलाबद्ध साहित्यिक स्वरूप प्राप्त होता है। भावों के अभिव्यंजन का साधन भाषा है और भाषा के आधार शब्द हैं जो वाक्यों में पिरोए जाने पर अपनी सार्थकता प्रदर्शित करते हैं। अतः शब्दों तथा वाक्यों का निरंतर संस्कार करते रहने एवं उपयुक्त रीति से उनका प्रयोग करने से ही अधिक से अधिक प्रभावोत्पादकता आ सकती है। इसके अतिरिक्त प्रचलित लोकोक्तियों का समुचित प्रयोग तथा भाव-व्यंजन की अनेक आलंकारिक प्रणालियों का उपयोग भी साहित्य-ग्रंथों की एक विशेषता है। कविता में भावों के उपयुक्त मनोहर छंदों का

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

प्रयोग तो चिरकाल से होता आ रहा है और नित्य नवीन छंदों का निर्माण भी साहित्य के कलापक्ष की पुष्टि करता है। भाषा की गति या प्रवाह, वाक्यों का समीकरण, शब्दों की लाक्षणिक तथा व्यंजनामूलक शक्तियों का अधिकाधिक प्रयोग ही साहित्य के कलापक्ष के विकास की सीढ़ियाँ हैं।

इस प्रकार साहित्य के भाव और कलापक्षों का विवेचन करके हम उसके तथ्य को समझ सकते हैं और यह जान सकते हैं कि साहित्य मनुष्य-मात्र के लिये स्वाभाविक है और अपने इस स्वरूप में वह देश और काल की सीमा से बद्ध नहीं है। यदि हम चाहें तो व्यापक दृष्टि से विश्व भर के साहित्य की परस्पर तुलना कर सकते हैं और स्थूल रूप से संसार के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों अथवा साहित्य-निर्माताओं की विभिन्न श्रेणियाँ भी निरूपित कर सकते हैं।

विश्व-साहित्य

इसमें संदेह नहीं कि संसार के भिन्न भिन्न देशों के कवियों और साहित्य-निर्माताओं की यह तुलनात्मक आलोचना बड़ी ही विशद और उपादेय होती है। इससे यह जाना जा सकता है कि मनुष्य-मात्र में जातीय और स्थानीय विशेषताओं के होते हुए भी एक सार्वजनीन एकता है और सभी श्रेष्ठ कवियों तथा लेखकों की रचनाओं में भावनामूलक साम्य भी है। निश्चय ही वह भावना मनुष्य-मात्र के लिए कल्याणकारिणी तथा अत्यंत उदार होती है। उत्कृष्ट कोटि के कवियों की

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

कल्पनाएँ एक दूसरे से बहुत अंशों में मिलती-जुलती होती हैं तथा उनकी काव्य-रचना की प्रणाली भी बहुत कुछ समता लिए होती है। संसार के भिन्न भिन्न राष्ट्रों में सद्भाव उत्पन्न करने में उस तात्त्विक एकता का उद्घाटन तथा प्रदर्शन करना अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है जो उन राष्ट्रों के साहित्य के मूल में है। साथ ही इस तुलनात्मक समीक्षा के द्वारा हम अनेक देशों और समयों के कवियों की व्यक्तिगत विशेषताएँ, उनकी प्रतिभा की दिशा तथा सामयिक स्थिति का भी परिचय प्राप्त कर सकते हैं। उक्त परिचय से हमें अपने समय के साहित्य की त्रुटियों की ओर ध्यान देने और उन्हें यथाशक्ति सुधारने की चेष्टा करने की भी प्रेरणा हो सकती है। अवश्य ही यह साहित्य का सार्वभौम अध्ययन और आलोचन एक कठिन कार्य है तथा विशेष सूक्ष्म दृष्टि तथा तत्पर अनुशीलन की आवश्यकता रखता है।

जातीय साहित्य

भौगोलिक कारणों से अथवा जलवायु के फल-स्वरूप या अन्य किसी कारण से, प्रत्येक देश अथवा जाति के साहित्य में कुछ न कुछ विशेषता होती है। यह संभव है कि कोई विशेष कलाकार किसी विशेष समय और कुछ विशेष परिस्थितियों से प्रभावान्वित होकर विदेशीय या विजातीय कला का अनुकरण करे तथा उनके विचारों की आँख मूँदकर नकल करना आरंभ कर दे, परंतु साहित्य के साधारण विकास में जातीय भावों तथा विचारों की छाप किसी न किसी रूप में अवश्य रहती है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

प्रत्येक सभ्य तथा स्वतंत्र देश का अपना स्वतंत्र साहित्य तथा अपनी स्वतंत्र कला होती है। भारतवर्ष में भी साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं का स्वतंत्र विकास हुआ और उनकी अपनी विशेषताएँ भी हुईं। भारतीय साहित्य तथा कला की विशेषताओं पर साधारण दृष्टि से विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन पर भारतीय आध्यात्मिक तथा लौकिक विचारों की गहरी छाप है। हम लोग प्राचीन काल से आदर्शवादी रहे हैं, हमें वर्त्तमान स्थिति की इतनी चिंता कभी नहीं हुई जितनी भविष्य की चिंता रही है। यही कारण है कि हमारे साहित्य तथा अन्य ललित कलाओं में आदर्शवादिता की प्रचुरता देख पड़ती है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि साहित्य और कलाएँ हमारे भावों तथा विचारों का प्रतिबिंब-मात्र हैं। अतएव जहाँ संसार की उन्नत जातियों की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं, वहाँ उनके साहित्य आदि पर भी उन विशेषताओं का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। इन्हीं साहित्यिक विशेषताओं के कारण "जातीय साहित्य" का व्यक्तित्व निर्धारित होता है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या जातिगत विशेषताएँ सदा सर्वदा पुरातन आधारों पर स्थित रहती हैं अथवा समय और स्थिति के अनुसार आदर्शों में परिवर्तन के साथ उनमें भी परिवर्तन हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि समय, संसर्ग और स्थिति के प्रभाव से जातीय आदर्शों में परिवर्तन हो जाता है, पर उनके पुरातन आधारों का सर्वथा लोप नहीं होता।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

इन्हीं पुरातन आदर्शों की नींव पर नये आदर्शों की उद्भावना होती है। जहाँ कारणविशेष से ऐसा नहीं होने पाता वहाँ के नये आदर्शों के स्थायित्व में बहुत कुछ कमी हो जाती है। जातीयता के स्थायित्व के लिये आदर्शों की धारा का अक्षुण्ण रहना आवश्यक है। हाँ, समय समय पर उस धारा की अंग-पुष्टि के लिये नये आदर्शरूपी स्रोतों का उसमें मिलना आवश्यक और हितकर होता है। ठीक यही स्थिति साहित्यरूपी सरिता की भी होती है। जिस प्रकार किसी जाति के परंपरागत विचार तथा स्थिर दार्शनिक सिद्धांत सहसा लुप्त नहीं हो सकते, उसी प्रकार जातीय साहित्य तथा कलाएँ भी अपनी जातीयता का लोप नहीं कर सकतीं। जातीयता का लोप कलाओं के विकास में बाधाएँ उपस्थित करता है। अतः उसका परित्याग अथवा उसकी अवहेलना किसी अवस्था में उचित नहीं।

हिंदी में जातीय साहित्य की योग्यता

अस्तु, उस अधिक व्यापक विषय को यहीं छोड़कर हमें अपने मुख्य विषय पर आना चाहिए। हमें हिंदी साहित्य के विकास का इतिहास उपस्थित करना है। हम यह जानते हैं कि हिंदी साहित्य का वंशगत संबंध प्राचीन भारतीय साहित्यों से है, क्योंकि संस्कृत तथा प्राकृत आदि की विकसित परंपरा ही हिंदी कहलाई है। जिस प्रकार पुत्री अपनी माता के रूप की ही नहीं, गुण की भी उत्तराधिकारिणी होती है, उसी प्रकार हिंदी ने भी संस्कृत, पाली तथा प्राकृत आदि साहित्यों में अभिव्यंजित आर्य-

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

जाति की स्थायी चित्तवृत्तियों और उसके विचारों की परंपरागत संपत्ति प्राप्त की है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य में जातीय साहित्य कहलाने की पूरी योग्यता है। अतएव हम पहले भारत-वर्ष के जातीय साहित्य की मुख्य मुख्य विशेषताओं का विचार करेंगे और तब हिंदी साहित्य के स्वरूप का चित्र उपस्थित करने का उद्योग करेंगे।

समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भारत के ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय की प्रसिद्धि है तथा जिस प्रकार वर्ण एवं आश्रम चतुष्टय के निरूपण द्वारा इस देश में सामाजिक समन्वय का सफल प्रयास हुआ है, ठीक उसी प्रकार साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं में भी भारतीय प्रवृत्ति समन्वय की ओर रही है। साहित्यिक समन्वय से हमारा तात्पर्य साहित्य में प्रदर्शित सुख-दुःख, उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद आदि विरोधी तथा विपरीत भावों के समीकरण तथा एक अलौकिक आनंद में उनके विलीन होने से है। साहित्य के किसी अंग को लेकर देखिए, सर्वत्र यही समन्वय दिखाई देगा। भारतीय नाटकों में सुख और दुःख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाए गए हैं पर सबका अवसान आनंद में ही किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतीयों का ध्येय सदा से जीवन का आदर्श स्वरूप उपस्थित करके उसका उत्कर्ष बढ़ाने और उसे उन्नत बनाने का रहा है।

हिंदी की विशेषताएँ

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

यदि हम थोड़ा सा विचार करें तो उपर्युक्त साहित्यिक समन्वय का रहस्य हमारी समझ में आ सकता है। जब हम थोड़ी देर के लिए साहित्य को छोड़कर भारतीय कलाओं का विश्लेषण करते हैं तब उनमें भी साहित्य की ही भाँति समन्वय की छाप दिखाई पड़ती है।

भारतीय साहित्य की दूसरी बड़ी विशेषता उसमें धार्मिक भावों की प्रचुरता है। हमारे यहाँ धर्म की बड़ी व्यापक व्याख्या की गई है और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उसको स्थान दिया गया है। धर्म में धारण करने की शक्ति है अतः केवल अध्यात्म पक्ष में ही नहीं, लौकिक आचारों-विचारों तथा राजनीति तक में उसका नियंत्रण स्वीकार किया गया है। मनुष्य के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को ध्यान में रखते हुए अनेक सामान्य तथा विशेष धर्मों का निरूपण किया गया है। हमारे साहित्य पर धर्म की अतिशयता का प्रभाव दो प्रधान रूपों में पड़ा। आध्यात्मिकता की अधिकता होने के कारण हमारे साहित्य में एक ओर तो पवित्र भावनाओं और जीवन-संबंधी गहन तथा गंभीर विचारों की प्रचुरता हुई और दूसरी ओर साधारण लौकिक भावों तथा विचारों का विस्तार नहीं हुआ। प्राचीन वैदिक साहित्य से लेकर हिंदी के वैष्णव साहित्य तक में हम यही बात पाते हैं।

यद्यपि भारतीय साहित्य की कितनी ही अन्य जातिगत विशेषताएँ हैं परंतु हम उसकी दो प्रधान विशेषताओं के उपर्युक्त

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

विवेचन से ही संतोष करके, उसकी दो एक देशगत विशेषताओं का वर्णन करके यह प्रसंग समाप्त करेंगे। प्रत्येक देश के जल-

साहित्य की देशगत विशेषताएँ

वायु अथवा भौगोलिक स्थिति का प्रभाव उस देश के साहित्य पर अवश्य पड़ता है और यह प्रभाव बहुत कुछ स्थायी भी होता है। संसार के सब देश एक ही प्रकार के नहीं होते। जलवायु तथा गर्मी सर्दी के साधारण विभेदों के अतिरिक्त उनके प्राकृतिक दृश्यों तथा उर्वरता आदि में भी अंतर होता है। यदि पृथ्वी पर अरब तथा सहारा जैसी दीर्घकाय मरुभूमियाँ हैं तो साइबीरिया तथा रूस के विस्तृत मैदान भी हैं। यदि यहाँ इँगलैंड तथा आयलैंड जैसे जलावृत द्वीप हैं तो चीन जैसा भूखंड भी है। इन विभिन्न भौगोलिक स्थितियों का उन देशों के साहित्यों से संबंध होता है, इसी को हम साहित्य की देशगत विशेषता कहते हैं।

भारत की सस्यश्यामला भूमि में जो निसर्गसिद्ध सुषमा है, उससे भारतीय कवियों का चिरकाल से अनुराग रहा है। यों

हिंदी की देशगत विशेषताएँ

तो प्रकृति की साधारण वस्तुएँ भी मनुष्य-मात्र के लिये आकर्षक होती हैं, परंतु उसकी सुंदरतम विभूतियों में मानव-वृत्तियाँ विशेष प्रकार से रमती हैं। भारतीय कवियों को प्रकृति की सुरम्य गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त है; वे हरे भरे उपवनों में तथा सुंदर जलाशयों के तटों पर विचरण करते एवं प्रकृति के नाना मनोहारी रूपों से परिचित होते हैं। यही कारण

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

है कि भारतीय कवि प्रकृति के संलिष्ट तथा सजीव चित्र जितनी मार्मिकता, उत्तमता तथा अधिकता से अंकित कर सकते हैं एवं उपमाउत्प्रेक्षाओं के लिये जैसी सुंदर वस्तुओं का उपयोग कर सकते हैं, वैसा रूखे-सूखे देशों के निवासी कवि नहीं कर सकते। यह भारत-भूमि की ही विशेषता है कि यहाँ के कवियों का प्रकृति वर्णन तथा तत्संभव सौंदर्यज्ञान उच्च कोटि का होता है।

प्रकृति के रम्य रूपों से तल्लीनता की जो अनुभूति होती है, उनका उपयोग कविगण कभी कभी रहस्यमयी भावनाओं के संचार में भी करते हैं। इसे हम प्रकृति-संबंधी रहस्यवाद कह सकते हैं और व्यापक रहस्यवाद का एक अंग मान सकते हैं। प्रकृति के विविध रूपों में विविध भावनाओं के उद्रेक की क्षमता होती है, परंतु रहस्यवादी कवियों को अधिकतर उसके मधुर स्वरूप से प्रयोजन होता है, क्योंकि भावावेश के लिये प्रकृति के मनोहर रूपों की जितनी उपयोगिता होती है, उतनी दूसरे रूपों की नहीं होती। यद्यपि इस देश की उत्तरकालीन विचार-धारा के कारण हिंदी में बहुत थोड़े रहस्यवादी कवि हुए हैं परंतु कुछ प्रेमप्रधान कवियों ने भारतीय मनोरम दृश्यों की सहायता से अपनी रहस्यमयी उक्तियों को अत्यधिक सरस तथा हृदयग्राही बना दिया है। यह भी हमारे साहित्य की एक देशगत विशेषता है।

ये जातिगत तथा देशगत विशेषताएँ तो हमारे साहित्य के

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

भावपक्ष की हैं। इनके अतिरिक्त उसके कलापक्ष में भी कुछ स्थायी जातीय मनोवृत्तियों का प्रतिबिंब अवश्य दिखाई देता है।

हिंदी के कलापक्ष की विशेषताएँ

कलापक्ष से हमारा अभिप्राय केवल शब्द-संगठन अथवा छंदोरचना तथा विविध आलंकारिक प्रयोगों से ही नहीं है, प्रत्युत उसमें भावों को व्यक्त करने की शैली भी सम्मिलित है। यद्यपि प्रत्येक कविता के मूल में कवि का व्यक्तित्व अंतर-निहित रहता है और आवश्यकता पड़ने पर उस कविता के विश्लेषण द्वारा हम कवि के आदर्शों तथा उसके व्यक्तित्व से परिचित हो सकते हैं, परंतु साधारणतः हम यह देखते हैं कि कुछ कवियः में प्रथम पुरुष एकवचन के प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक होती है तथा कुछ कवि अन्य पुरुष में अपने भाव प्रकट करते हैं। अँगरेजी में इसी विभिन्नता के आधार पर कविता के व्यक्ति-गत (Subjective) तथा वस्तुगत (Objective) नामक विभेद हुए हैं परंतु ये विभेद वास्तव में कविता के नहीं हैं, उसकी शैली के हैं। दोनों प्रकार की कविताओं में कवि के आदर्शों का अभिव्यंजन होता है, केवल इस अभिव्यंजन के ढंग में अंतर रहता है। एक में वे आदर्श, आत्मकथन अथवा आत्मनिवेदन के रूप में व्यक्त किये जाते हैं तथा दूसरे में उन्हें व्यंजित करने के लिये वर्णनात्मक प्रणाली का आधार ग्रहण किया जाता है। भारतीय कवियों में दूसरी (वर्णनात्मक) शैली की अधिकता तथा पहली की न्यूनता पाई जाती है। यही कारण

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

है कि यहाँ वर्णनात्मक काव्य अधिक हैं तथा कुछ भक्त कवियों की रचनाओं के अतिरिक्त उस प्रकार की कविता का अभाव है, जिसे गीति काव्य कहते हैं और जो विशेषकर पदों के रूप में लिखी जाती है।

साहित्य के कलापक्ष की अन्य महत्त्वपूर्ण जातीय विशेषताओं से परिचित होने के लिये हमें उसके शब्द-समुदाय पर ध्यान देना पड़ेगा, साथ ही भारतीय संगीतशास्त्र की कुछ साधारण बातें भी जान लेनी होंगी। वाक्य रचना के विविध भेदों, शब्दगत तथा अर्थगत अलंकारों और अक्षर मात्रिक अथवा लघु गुरु मात्रिक आदि छंद समुदायों का विवेचन भी उपयोगी हो सकता है।

हिंदी में भारतीय संगीत

भारतीय संगीत की सबसे प्रधान विशेषता यह है कि उसमें स्वरों तथा लय का सामंजस्य स्थापित किया गया है। यूरोपीय संगीत में लय पर अधिक ध्यान दिया गया है और स्वरों के सामंजस्य या राग की बहुत कुछ अवहेलना की गई है। इस देश में अत्यंत प्राचीन काल से संगीत की उन्नति होती आई है और अनेक संगीत-शास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण भी होता आया है। यहाँ का प्राचीन संगीत यद्यपि अपने शुद्ध रूप में अब तक मिलता है, परंतु विदेशीय प्रभावों तथा अनेक देश भेदों के फल-स्वरूप उसकी 'देशी' नामक एक विभिन्न शाखा भी हो गई जिसका विकास निरंतर होता रहा। हिंदी साहित्य के विकास-काल में "देशी"

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

संगीत प्रचलित हो चुका था, अतः उसमें 'देशी' संगीत का बहुत कुछ पुट पाया जाता है। इसके अतिरिक्त रागों और रागिनियों के अनेक भेदों का ठीक ठीक अभिव्यंजन करने की क्षमता जितनी हिंदी ने दिखलाई, साथ ही जितने सुचारु रूप से संगीत के अन्य अवयवों का विकास उसमें हुआ है उतना अन्य किसी प्रांतीय भाषा में नहीं हुआ।

हिंदी की दो अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ

हमारे साहित्य पर उपर्युक्त जातिगत तथा देशगत प्रवृत्तियों का प्रभाव बहुत कुछ स्थायी है। इनके अतिरिक्त दो-एक अन्य प्रासंगित बातें हैं जिनका हिंदी साहित्य के विकास से घनिष्ठ संबंध रहा है तथा जिनकी छाप हिंदी साहित्य पर स्थायी नहीं तो चिरकालिक अवश्य है। पहली बात यह है कि हिंदी साहित्य के प्रारंभिक युग के पहले ही संस्कृत साहित्य उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचकर अधःपतित होने लगा था। जीवित साहित्यों में नवीन नवीन रचना-प्रणालियों के आविर्भाव तथा अन्य अभिनव उद्भावनाओं की जो प्रकृति होती है, उसका संस्कृत में अभाव हो चला था। अनेक रीति-ग्रंथों का निर्माण हो जाने के कारण साहित्य में गतिशीलता रह ही नहीं गई थी। नियमों का साम्राज्य उसमें विराज रहा था, उनका उल्लंघन करना तत्कालीन साहित्यकारों के लिए असंभव सा था। हिंदी के स्वतंत्र विकास में संस्कृत के इस स्वरूप ने बड़ी बड़ी रुकावटें डालीं।

ध्यान देने की दूसरी बात यह है कि हिंदी साहित्य का

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

संपूर्ण युग अशांति, निराशा तथा पराधीनता का युग रहा है। हिंदी के प्रारंभिक काल में देश स्वतंत्र अवश्य था परंतु उस समय तक उसकी स्वतंत्रता में बाधाएँ पड़ने लग गई थीं और उसके संमुख आत्मरक्षा का कठिन प्रश्न उपस्थित हो चुका था। देश के लिए वह हलचल तथा अशांति का युग था। उसके उपरांत वह युग भी आया जिसमें देश की स्वतंत्रता नष्ट हो गई और उसके अधिकांश भाग में विदेशीय तथा विजातीय शासन की प्रतिष्ठा हो गई। तब से अब तक थोड़े बहुत अंतर से वैसी ही परिस्थिति बनी है। हमारे संपूर्ण साहित्य में करुणा की जो एक हल्की सी अंतर्धारा व्याप्त मिलती है वह इसी के परिणामस्वरूप है।

प्रगतिशील साहित्य

अब तक जो कुछ कहा गया है उससे हिंदी साहित्य का स्वरूप समझने में थोड़ी बहुत सहायता मिल सकती है; अथवा अधिक नहीं तो उसकी कुछ स्थायी विशेषताओं का ही ज्ञान हो सकता है; परन्तु केवल कुछ विशेषताओं के प्रदर्शन से, साहित्य की आंशिक झलक दिखा देने से ही, साहित्य का इतिहास पूरा नहीं हो सकता। उपर्युक्त बातें तो केवल एक सीमा तक उसके उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। किसी साहित्य के इतिहास का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये केवल उस साहित्य की जातिगत या देशगत प्रवृत्तियों को ही जानना आवश्यक नहीं होता, वरन् विभिन्न कालों में उसकी कैसी अवस्था रही, देश के सामाजिक,

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

धार्मिक तथा कला कौशल-संबंधी आंदोलनों के उस पर कैसे कैसे प्रभाव पड़े, किन किन व्यक्तियों की प्रतिभा ने उसकी कितनी और कैसी उन्नति की, ऐसी अनेक बातों का जानना भी अनिवार्य होता है।

हिंदी साहित्य का कालविभाग

यदि हम विगत नौ सौ वर्षों की हिंदी साहित्य की प्रगति का सिंहावलोकन करें तो कालक्रमानुसार उसके अनेक विभाग दिखाई देंगे। उसके प्रारंभिक काल के वीर गाथाओं तथा अन्य प्रकार की वीरोल्लासिनी कविताओं की प्रधानता दिखाई देती है, यद्यपि उस काल की कविता में शृंगार अथवा प्रेम की भी झलक पाई जाती है, तथापि वे वीरता की पुष्टि के लिये आए हैं, स्वतंत्र रूप में नहीं। जब जब वीरों को वीरता अथवा साहस का प्रदर्शन करना होता था तब तब कविगण शृंगार की किसी मूर्तिमती रमणी की भी आयोजना कर लेते थे और उसके स्वयंवर आदि की कल्पना द्वारा अपनी वीरगाथाओं में अधिक रोचकता का समावेश करने का प्रयत्न करते थे। यही उस काल की विशेषता थी। इसके उपरांत हिंदी साहित्य अपने भक्तियुग में प्रवेश करता है और उसमें वैष्णव तथा सूफी काव्य की प्रचुरता देख पड़ती है। रामभक्त तथा कृष्णभक्त कवियों का यह युग हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग समझा जाता है। इसमें हिंदी कविता भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गई। हिंदी कविता की इस अभूतपूर्व

फा० २

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

उन्नति के विधायक कबीर, जायसी, तुलसी तथा सूर आदि महाकवि हो गए हैं जिनकी यशोगाथा हिंदी साहित्य के इतिहास में अमर हो गई है। इस युग के समाप्त होने पर हिंदी में शृंगार कविता की अधिकता हुई और रीति-ग्रंथों की परंपरा चली। हमारे साहित्य पर मुगल-साम्राज्य की तत्कालीन सुख समृद्धि तथा तत्संभव विलासिता की प्रत्यक्ष छाप दिखाई देती है। कला-कौशल की अभिवृद्धि के साथ साथ हिंदी कविता में भी 'कलापक्ष की प्रधानता हो गई और फारसी-साहित्य तथा संस्कृत-साहित्य के पिछले स्वरूप के परिणाम में हिंदी में मुक्तक काव्य की अतिशयता देख पड़ने लगी। यद्यपि इस युग में शुद्ध प्रेम का चित्रण करनेवाले रसखान, घनानंद तथा ठाकुर आदि कवि भी हुए और साथ ही भूषण आदि वीर कवियों का भी यही युग था' तथापि इसके प्रतिनिधि कवि देव, बिहारी तथा पद्माकर आदि ही कहलाएँगे। इनकी परंपरा बहुत दिनों तक चलती रही। अंत में भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्याकाश में उदित होते ही हिंदी में एक नवीन प्रकाश फैला। यद्यपि इसकी सर्व-प्रधान विशेषता गद्य-साहित्य का विकास मानी जा सकती है, पर यह नवीन प्रकाश सर्वतोमुखी था। इस युग के साहित्य में पश्चिमीय प्रणालियों तथा आदर्शों की बहुत कुछ छाप पड़ी है और हिंदी एक नवीन रूप में ढल गई सी जान पड़ती है। हिंदी ही क्यों, अन्य भारतीय भाषाएँ भी बहुत कुछ पाश्चात्य भावों के योग से प्रगतिशील हो रही हैं। इसे हम नवीन विकास का

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

युग मान सकते हैं। अतएव हम हिंदी साहित्य का काल-विभाग संक्षेप में इस प्रकार कर सकते हैं—

आदि युग (वीरगाथा का युग—संवत् १०५० से १४०० तक)
पूर्व मध्य युग (भक्ति का युग—संवत् १४०० से १७०० तक)
उत्तर मध्य युग (रीति-ग्रंथों का युग—संवत् १७०० से १९०० तक)
आधुनिक युग (नवीन विकास का युग—संवत् १९०० से अब तक)

कालविभाग की त्रुटियाँ

परंतु उपर्युक्त कालविभाग तथा प्रत्येक काल की विशेषताओं के प्रदर्शन से हमारा यह आशय नहीं है कि एक काल के समाप्त होते ही काव्य-धारा दूसरे दिन से ही दूसरी दिशा में बहने लगी और न यही अभिप्राय है कि उन विभिन्न कालों में अन्य प्रकार की रचनाएँ हुई ही नहीं। साहित्य पर काल का प्रभाव पड़ता अवश्य है, परंतु विभिन्न कालों का परिवर्तन बहुधा आकस्मिक हुआ करता है। राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितियाँ धीरे धीरे बदलती हैं, एक ही दिन में वे परिवर्तित नहीं हो जातीं। इसी प्रकार काव्यधारा भी धीरे धीरे अपना पुराना स्वरूप बदलती तथा नवीन रूप धारण करती है, वह कभी एकदम से नया मार्ग नहीं ग्रहण करती। दूसरी बात यह है कि साहित्य कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है कि सामाजिक आदि स्थितियों के बदलते ही तुरंत बदल जाय। कभी कभी तो साहित्य ही आगे बढ़कर समाज का नियंत्रण करता है और उसे नये मार्ग पर लाता है। साथ ही यह भी सत्य है कि किसी किसी काल में सामाजिक अथवा

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

राजनीतिक आदि स्थितियों के सुधर जाने पर भी साहित्य पिछड़ा ही रहता है और बड़ी कठिनता से समाज के साहचर्य में आता है, उसके अनुकूल होता है। कहने का तात्पर्य यही है कि यद्यपि साहित्य का समाज की विभिन्न स्थितियों से बड़ा घनिष्ठ संबंध होता है परंतु वह संबंध ऐसा यांत्रिक तथा कठोर नहीं होता कि साहित्य उन स्थितियों की अवहेलना न कर सके और स्वतंत्र रीति से उसका विकास न हो सके।

साहित्य के इतिहास में कालविभाग कर लेने से उसकी विभिन्न कालों की स्थिति समझने में सुगमता तो अवश्य होती है, परंतु साथ ही यह बात भी न भूल जानी चाहिए कि साहित्य एक वैयक्तिक कला है; और प्रत्येक बड़े साहित्यकार की अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ होती हैं। यद्यपि ये विशेषताएँ देश और काल से बहुत कुछ निरूपित होती हैं, तथापि इनमें साहित्यकार के व्यक्तित्व की भी छाप होती है। प्रतिभाशाली तथा विचक्षण कवि अथवा लेखक कभी कभी स्वतंत्र रीति से वाणी के विलास में प्रवृत्त होते हैं और समाज की साधारण स्थितियों का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। अधिकतर यही देखा जाता है कि जो कवि जितना ही अधिक स्वतंत्र तथा मौलिक विचारवाला होता है, वह समाज की लकीर पर चलना उतना ही अधिक अस्वीकार करता है और उतना ही अधिक वह साहित्य के साधारण प्रवाह से दूर पहुँच जाता है।

——

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

दूसरा अध्याय

भिन्न भिन्न परिस्थितियाँ

हम पहले अध्याय में यह कह चुके हैं कि देश और काल से साहित्य का अविच्छिन्न संबंध है, और प्रत्येक देश के विभिन्न कालों की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आदि स्थितियों का प्रभाव उस देश के साहित्य पर पड़ता है।

पूर्वाभास

उत्तर भारत में हर्षवर्द्धन अंतिम हिंदी सम्राट् हुआ जिसने अपने प्रभाव, बल और शौर्य से समस्त उत्तरापथ में अपना एकाधिपत्य स्थापित किया और जो अपनी धर्म-बुद्धि तथा शासननीति के कारण प्रजा को सुख-समृद्ध-पूर्ण करके देश के महान् शासकों की श्रेणी में प्रतिष्ठित हुआ। उसके शासनकाल में भारत ने वह शांति और सुव्यवस्था पाई थी जो उसे विशाल मौर्य तथा गुप्त साम्राज्यों में ही मिली थी।

आदि काल

सांस्कृतिक स्थिति

हर्षवर्द्धन की मृत्यु विक्रम संवत् ७०४ में हुई। उसके पीछे का भारतवर्ष का इतिहास आपस के लड़ाई झगड़ों का इतिहास है। हर्ष की मृत्यु के साथ ही हिंदुओं के अंतिम साम्राज्य का अंत हो गया और देश खंड खंड होकर विभिन्न अधिपतियों के हाथों में चला गया। हर्ष के साम्राज्य के भिन्न भिन्न अंशों पर अनेक खंड-राज्य स्थापित

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

हुए जो आधिपत्य के लिये आपस में लड़ते रहे। इनमें मुख्य तोमर, राठौर, चौहान, चालुक्य और चंदेल थे। इनकी राजधानियाँ दिल्ली, कन्नौज, अजमेर, धार और कलिंजर में थीं। हमारे हिंदी साहित्य का इतिहास उस समय से आरंभ होता है जब ये राज्य स्थापित हो चुके थे।

यद्यपि मुसलमानों का भारतवर्ष में पहले पहल आगमन खलीफा उमर के समय में संवत् ६९३ में हुआ था और इसके अनंतर सिंध पर निरंतर उनके आक्रमण होते रहे थे, पर ये आक्रमण लूट-पाट के उद्देश से होते थे, राज्य-स्थापन की कामना से नहीं होते थे। पीछे से ये लोग यहाँ बसने और जीते हुए प्रदेश पर अपना शासनाधिकार जमाने के अभिलाषी हुए। कुछ राजवंश मुलतान, मनसूरा आदि में स्थापित हुए और सैयदों ने सिंधु-तटों के प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया। इस प्रदेश पर मुसलमानों के इन आक्रमणों का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। इन्होंने अपने शासन के जो कुछ चिन्ह छोड़े, वे बड़ी बड़ी इमारतों के भग्नावशेष मात्र हैं, जो आक्रमणकारियों की क्रूरता और अत्याचार के स्मारक स्वरूप अब तक वर्तमान हैं।

संस्कृति की दृष्टि से हिंदुओं पर विजय न पा सकने पर भी धीरे धीरे मुसलमानों का आतंक बढ़ता गया और उनके आक्रमण बहुत कुछ दृढ़ और नियमित हो गए। हिंदू बिलकुल निर्बल नहीं थे, उनकी सेनाएँ बलवती थीं, पर दार्शनिक वाद-विवाद और अहिंसा आदि पर विश्वास करनेवाली जाति बहुत दिनों तक

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

अपनी रक्षा नहीं कर सकी। यद्यपि उस समय हिंदुओं के वर्ण-भेद के कारण आजकल का सा जातीय कट्टरपन नहीं आ सका था, परंतु संघटित होकर यवन-शक्ति का विरोध करने में हिंदुओं की समस्त शक्ति एकत्र नहीं हो सकी। ब्राह्मणों में शैव, शक्ति आदि विभेद भी हो चले थे और क्षत्रियों में तो आपस की छीना-झपटी लगी ही थी। इस प्रकार जातीय शक्ति विशृंखल होकर पराधीनता की बेड़ी पहनने को तैयार हो गई थी।

राजनीतिक अवस्था

इसी समय गजनी के सुलतान महमूद के प्रसिद्ध आक्रमण प्रारंभ हुए। देश का अनंत धन-जन छीना गया। मंदिर तोड़े गए, कला के सुंदरतम निदर्शन नष्ट कर दिए गए। फिर भी राजपूत राजाओं की नींद न खुली, उनका आपस का विद्वेष बना ही रहा। अंत में जब गजनी साम्राज्य के उखड़ जाने पर गोर प्रदेश के अधिपति ने यवन-शक्ति का नवीन संघटन किया तब मुसलमानों की नीति में बिलकुल परिवर्तन हो गया। इसके पहले उनके आक्रमणों का मुख्य उद्देश लूट-मार कर काफिरों को तंग करना और इस देश की अतुल धन संपत्ति को विदेश ले जाना तथा यहाँ के निवासियों को गुलाम बनाना था, पर अब वे भारत पर राज-नीतिक आधिपत्य जमाने का प्रयत्न करने लगे। मुहम्मद गोरी ने पहले तो पंजाब प्रदेश का एक विस्तृत भूभाग हस्तगत किया और फिर उत्तर भारत के प्रसिद्ध राजपूत राज्यों पर चढ़ाई करने का आयोजना किया। हिंदू शक्ति दिल्ली के प्रसिद्ध चौहान अधि-

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

पति पृथ्वीराज की अध्यक्षता में एक बार जागी और गोरी को अनेक बार हारकर भागना और कैद होना पड़ा, पर बंधुभाव-समन्वित यवन सेना के सामने हिंदू बहुत समय तक नहीं ठहर सके। पारस्परिक झगड़ों में ही उनका बहुत कुछ ह्रास हो गया था। फलतः मुहम्मद गोरी ने संवत् १२४९ में प्रसिद्ध तराई की लड़ाई में हिंदुओं को पराजित कर दिया। इसके उपरांत क्रमशः कन्नौज आदि के विस्तृत हिंदू राज्य भी मुसलमानों से पादाक्रांत हुए और थोड़े समय में ही पंजाब से लेकर बंगाल तक यवन झंडा फहराने लगा। कन्नौज के तत्कालीन नरेश जयचंद ने मुहम्मद गोरी से मिलकर पृथ्वीराज को हराने का षड्यंत्र रचा था। पर वास्तव में सारी जाति को ही भारत का स्वातंत्र्य खोने का अपराधी मानना उचित होगा। जयचंद की प्रवृत्ति उस समय के समस्त खंडाधिपतियों की प्रवृत्ति हो रही थी, नहीं तो एक जयचंद के विश्वासघात से समस्त देश का पराजित होना कभी संभव नहीं था।

यद्यपि देश ने अपनी स्वतंत्रता खोकर उन समस्त संकटों का सामना किया जो एक परतंत्र देश को करने पड़ते हैं, पर मुसलमानों के शासन से कुछ लाभ भी हुए। यह ठीक है कि हिंदू आत्मसम्मान खो बैठे, उनके गौरव का ह्रास हो गया और विजातीय तथा विधर्मी शासन के प्रतिष्ठित होने के कारण यहाँ की धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था को बड़ा धक्का लगा, परंतु जो जाति क्षुद्र स्वार्थों के वशीभूत होकर अपनी राष्ट्रीयता का अनुभव

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

नहीं कर सकती, उसे ऐसा ही फल मिलता है। मुसलमानों के राज्य-स्थापन के उपरांत उनकी भाषा और उनके धर्म का प्रचार भी हुआ, और कुछ निरंकुश शासकों ने तलवार के बल से धर्म का प्रचार किया और यहाँ की समाजनीति को उलट-पुलट डालने में पाशविक बल की सहायता ली। समाज-नीति के सुव्यवस्थित संचालन के लिये जिस अनुकूल राजशक्ति तथा अन्य वातावरण की आवश्यकता होती है वह हिंदुओं को बहुत कम प्राप्त हुई, फलतः उनके सामाजिक बँधन बहुत कुछ शिथिल और अनियमित हो गए। परंतु साथ ही हमको यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यवन शासन के स्थापित हो जाने पर एक सीमा तक उस सुख और समृद्धि का काल आया जो विशाल साम्राज्यों में ही प्राप्त हो सकता है, टूटे फूटे और संघर्षपूर्ण खंड राज्यों में नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त नवीन यवनशक्ति में जो सजीवता और उत्साह था, उससे यहाँ के वायुमंडल को एक अभिनव चेतना मिली और अनेक क्षेत्रों में नवीन प्रगति का आरंभ हुआ। मुसलिम कला के संयोग से भारतीय कला एक नए साँचे में ढली और मुसल-मानों की बाहरी "तहजीब" (शिष्टता) का भी हम पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए।

जिस समय राजनीतिक क्षेत्र में मुसलमानों का प्रभाव बढ़ रहा था और उनके आक्रमण तथा राज्य-स्थापन के कार्य शीघ्रता से चल रहे थे, उस समय भारत की धार्मिक परिस्थिति तथा सामाजिक अवस्था में भी परिवर्तन हो रहा था। विक्रम की

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

तेरहवीं शताब्दी के मध्य में जब मुसलमानों का आक्रमण बिहार पर हुआ तब रहे सहे बौद्ध भी लुप्त हो गए और इस प्रकार इस देश में उस धर्म का अस्तित्व ही प्रायः मिट सा गया, जो किसी समय देश-व्यापी हो रहा था। वैदिक हिंदू धर्म की पुनः प्रतिष्ठा हो जाने पर शैव, शाक्त, वैष्णव आदि अनेक संप्रदाय भी चल निकले, जिनमें पारस्परिक स्पर्द्धा रहती थी। तत्कालीन राजपूतों की मनोवृत्ति की सहायता से शैव तथा शाक्त संप्रदायों की ही विशेष अभिवृद्धि हुई थी।

सामाजिक अवस्था

तत्कालीन समाज में क्षत्रियों का प्राबल्य था, ब्राह्मण पूज्य अवश्य समझे जाते थे, पर उनकी श्रेष्ठता कम हो चली थी। वह राजपूतों का उत्थान काल था। राजपूत सरल प्रकृति के परंतु शक्तिसंपन्न और वीर योद्धा थे। उनकी उदारता भी कम प्रसिद्ध न थी। वे अपनी स्त्रियों का विशेष सम्मान करते थे और उनकी वीर रमणियाँ भी अपने पूज्य पतियों के लिए प्राणों तक का मोह नहीं करती थीं। जौहर की प्रथा तब तक प्रचलित थी जिससे तत्कालीन राजपूत वीरांगनाओं के पतिपरायणा होने का उज्ज्वल परिचय मिलता है। परंतु राजपूतों में बहुत से अवगुण भी थे जिनके कारण उनकी शक्ति क्षीण हो गई। वे क्रोधी थे, और छोटी छोटी बातों में उबल पड़ते थे। वैयक्तिक स्पर्द्धा से अंधे होकर जाति और राष्ट्र के लाभों को वे विस्मृत कर देते थे, संघटित होकर विपत्तियों का सामना करने के लिये

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वे प्रवृत्त न होते थे। यह ठीक है कि बीसलदेव, पृथ्वीराज, हम्मीरदेव तथा राणा साँगा जैसे वीर राजपूत भी हुए जिन्हें देश के गौरव का विशेष ध्यान था, पर अधिकांश राजपूत राजाओं में राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। प्रजा भी तत्कालीन राजनीतिक उलट-फेर में पड़कर अपना ध्येय निरूपित न कर सकी। फलतः उसमें भी कलह और विद्वेष का विष व्याप्त हो गया। जातीय पतन का यह बहुत ही भीषण काल था।

पूर्व मध्यकाल

राजनीतिक अवस्था

मुहम्मद गोरी के उपरांत दिल्ली का शासनाधिकार क्रमशः गुलाम, खिलजी तथा तुगलक राजघरानों के हाथ में रहा। यद्यपि इन राजवंशों ने कई सौ वर्षों तक शासन किया; पर इस समय कोई सुव्यवस्थित शासननीति आविर्भूत न हो सकी। विभिन्न अधिपति अपनी अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार राज्य करते थे और प्रजा को उनकी नीति स्वीकार करनी पड़ती थी। उस काल में यद्यपि मुसमलानों के पैर इस देश में अच्छी तरह जम गए थे और उन्हें यहाँ से निकाल बाहर करने की शक्ति हिंदुओं में नहीं रह गई थी, पर फिर भी हिंदुओं ने उस समय तक विदेशीय शासन को एकदम अंगीकार नहीं कर लिया था। मुसलमान शासक भी अब तक किसी बड़े साम्राज्य स्थापन का कार्य नहीं कर सके थे और राजपूत राजाओं से कर लेकर ही वे संतोष कर लेते थे।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

इस काल में यद्यपि अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक और फिरोज शाह जैसे बड़े नृपति भी हुए, पर ये उस केंद्रीय शासन की प्रतिष्ठा करने में समर्थ नहीं हुए जिसका सम्यक् आविर्भाव मुगल काल में हुआ। अनेक मुसलमान राजवंश बहुत कुछ स्वतंत्र होकर जौनपुर आदि में स्थापित हुए जो दिल्ली के मुख्य शासन से प्रायः असंपर्कित थे।

सामाजिक अवस्था

इन मुसलमान शासकों के समय में विलासिता की वृद्धि हुई और मुसलमान तथा हिंदू दोनों ही नैतिक दृष्टि से अधःपतित होने लगे। मदिरा का प्रचार व्यापक रूप में हो रहा था और बड़ी बड़ी बुराइयाँ शीघ्रता से फैल रही थीं। यद्यपि बलबन तथा अलाउद्दीन आदि कुछ शासकों ने सुधार की चेष्टा की थी, परंतु वैभव की वृद्धि के कारण एक ओर तो मुसलमानों को उस ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला और दूसरी ओर उस वृद्धि के साथ ही धार्मिक शिथिलता भी आई तथा समाज में अनेक प्रकार के अंध विश्वास घुस गए। अज्ञान का साम्राज्य था। हिंदुओं को विजेता यवन नीची निगाह से देखते और उनका तिरस्कार करते थे। उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता मिली थी, पर जजिया जैसे कर देने पर। उच्च सरकारी पदों पर वे बहुत कम लिए जाते थे। धार्मिक विषयों का निर्णय मुसलमान काजी करते थे।

फलतः एक महान् धार्मिक आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिसका प्रभाव देश के कोने कोने में पड़ा। इस आंदोलन को इतिहास

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

में वैष्णव आंदोलन कहा गया है। नवीन धार्मिक चेतना से अनुप्राणित होकर हिंदू जाति एक बार फिर से सचेत हो उठी।

मध्यकालीन धार्मिक उत्थान

इस देश में मुसलमानों के बस जाने के कारण जो स्थिति उत्पन्न हो गई थी यद्यपि उसका प्रभाव भी इस आंदोलन पर पड़ा, पर निस्संकोच भाव से इतना कहा जा सकता है कि अपने शुद्ध स्वरूप में, यह हिंदुओं के शास्त्रानुकूल था और सगुणोपासना के उस सिद्धांत पर अवलंबित था जिसका आविर्भाव इस देश में मुसलमानों के आने से बहुत पहले हो चुका था। इस नवीन धार्मिक आंदोलन का अन्य क्षेत्रों पर जो प्रभाव पड़ा, वह तो पड़ा ही, साहित्यक्षेत्र भी उसके सुभ परिणाम-स्वरूप अनंत उर्वर हो उठा और अनेक प्रतिभाशाली कवियों की वाणी से असंख्य जनता अपूर्व शांति और आशा से लहलहा उठी।

उत्तर मध्य काल

जिस समय उपासना के बहुत से संप्रदाय बन रहे थे और हिंदुओं तथा मुसलमानों का पारस्परिक हेल-मेल बढ़ रहा था;

राजनीतिक अवस्था

उस समय मुगलों का सुख-समृद्धिपूर्ण साम्राज्य था। परंतु थोड़े समय के बाद अवस्था में परिवर्तन हुआ। संवत् १७१६ में औरंगजेब मुगल-साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। उसने राज्याधिकार पाते ही नृशंस तथा धर्मांध शासक की नीति घोषित कर दी। अकबर

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

आदि की उदार नीति का अंत हो गया। जजिया कर फिर से जारी किया गया। तीर्थस्थानों में अनेक सुंदर मंदिर तोड़कर मस्जिदें बनने लगीं। साम्राज्य के दृढ़ स्तंभ राजपूतों का अविश्वास और अनादर होने लगा, परिणाम-स्वरूप देश में अशांति व्याप्त हो गई और नई हलचल आरंभ हो गई। सबसे पहले महाराष्ट्र शक्ति का उदय हुआ। औरंगजेब को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। संवत् १७६४ में उसकी मृत्यु के उपरांत तो देहली का केंद्रीय शासन और भी डाँवाँडोल हो गया। पंजाब में सिख शक्ति का आतंक छा गया। राजपूतों ने मुगलों का साथ देना छोड़ दिया। रुहेलखंड के रुहेलों का स्वतंत्र राज्य स्थापित हुआ। अवध और बंगाल के सूबेदारों ने देहली का आधिपत्य अस्वीकृत कर नवाब की उपाधि धारण की और कर देना बंद किया। आगरे के निकट के जाट भी स्वतंत्र हो गए। मराठों के पैर तो पहले ही जम चुके थे; अब वे आत्म-विस्तार करने में लगे। इसी बीच में प्रसिद्ध आक्रमणकारी नादिरशाह ने आकर दिल्ली को रक्तरंजित कर दिया। इस अवसर से लाभ उठाकर मराठे लाहौर तक बढ़ गए और समस्त उत्तरापथ उनके अधिकार में हो गया। देश में एक बार फिर से हिंदू राज्य की प्रतिष्ठा होने लगी और इस आशा से हिंदुओं में एक जाग्रति सी दिखाई पड़ने लगी।

विलायत से सात समुद्र पार कर अँगरेज जाति भारत में व्यापार करने आई। पहले दक्षिण में उसका व्यापार हो रहा

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

था, पर अशांति के उस युग में उसे अधिकार-प्राप्ति की भी इच्छा हुई। भारतीय युद्धपद्धति से उनकी युद्धपद्धति बहुत अधिक उन्नत थी और उनमें नवीन उत्साह की तरंगें भी उद्वेलित हो रही थीं। पहले दक्षिण में ही उन्होंने व्यापार छोड़ तलवार ग्रहण की थी। बंगाल में सिराजुद्दौला की निर्बलता से उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। संवत् १८१४ में पलासी के प्रसिद्ध युद्ध में सिराजुद्दौला को हराकर क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली। संवत् १८२१ में बक्सर के युद्ध में बंगाल और अवध के नवाबों तथा मुगल सम्राट् शाहआलम की सम्मिलित वाहिनी को परास्त कर विजयी अँगरेजों ने उत्तर भारत के एक विशाल खंड पर अपना स्वत्व जमाना चाहा; पर मराठों के प्रयत्न से शाहआलम फिर से दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ। मराठों की चौथ इस समय प्रायः भारत-व्यापी हो रही थी। इधर हेस्टिंग्ज ने बंगाल में अँगरेजी शासन दृढ़ किया और अवध को अपने पंजे में किया। महादाजी के हटने से मराठों की शक्ति कम होने लगी। लार्ड वेलेजली के समय में मराठे उत्तर भारत में शक्तिहीन हो गए। पर इतने में ही सिख शक्ति वीर रणजीतसिंह के नेतृत्व में संघटित होकर मैदान में आई। काश्मीर और पेशावर तक के प्रांत सिखों के थे। परंतु रणजीतसिंह की मृत्यु (१८१६) के उपरांत सिख साम्राज्य भी स्थिर न रह सका। संवत् १९०५ के सिख-युद्ध में अँगरेजों की विजय हुई और सिख साम्राज्य का अंत

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

हो गया। इस प्रकार ब्रह्मपुत्र और सिंध नदियों के बीच का विशाल उत्तर भारत अँगरेजों का हो गया।

राजनीतिक उथल-पुथल के इस युग में जनता की अवस्था कितनी भयानक थी, इतिहासकार इसके संबंध में चुप नहीं हैं।

सामाजिक अवस्था

बंगाल की दोहरी शासन-प्रणाली (Double government) के कारण जो दुर्दशा थी, वह तो थी ही, मराठों के उत्पात और अँगरेजों की व्यापारिक नीति से उसकी और भी शोचनीय स्थिति हो गई। नए बंदोबस्त से जमींदारों को धक्का लगा और किसानों पर कड़ाई से कर लेने की प्रथा चल निकली। इस तरह व्यापार और कृषि के चौपट हो जाने से जनता की आर्थिक दुरवस्था भीषण हो गई और बेकारी के कारण ठगी का आश्रय लिया जाने लगा। गाँवों के प्राचीन संघटन में भी बाधा डाली गई और पंचायतों की जगह ऐसी अदालतों का प्रचार हुआ जिनकी दंड-विधि से कोई परिचित ही न था। अँगरेज जजों को भारतीय रीति-नीति का पता न था और दूसरी ओर हिंदुस्तानियों को अपने नए शासकों के कानूनों का ज्ञान न था। इसका फल यह हुआ कि वकीलों की एक नई श्रेणी निकल पड़ी। कार्नवालिस के समय से हिंदुस्तानियों को बड़ी सरकारी नौकरियाँ न दी जाने लगीं क्योंकि उसका विश्वास था कि हिंदुस्तानी झूठे और घूसखोर होते हैं। संवत् १८९० से यह नीति कुछ कुछ [illegible]। शासन और न्याय का काम बहुत बढ़ जाने के कारण

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

हिंदुस्तानियों की सहायता लेना अनिवार्य हो गया। तभी से देश के शासन का कुछ अंश यहाँ के निवासियों को भी दिया जाने लगा।

धार्मिक अवस्था

हिंदुओं और मुसलमानों को एक बनाने के लिये सिख धर्म का प्रादुर्भाव हुआ था परंतु मुसलमान शासकों की संकीर्ण नीति के कारण मुसलमान सिखों के घोर विरोधी बन बैठे। अँगरेजों के साथ साथ ईसाई मत का भी प्रचार हुआ। यद्यपि प्रकट रीति से सरकार की ओर से भारतीयों के धार्मिक विचारों पर आघात नहीं किए गए, पर विजेता की शक्ति का प्रभाव विजितों पर कैसे न पड़ता। वेलेजली के समय में सात देशी भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद निकाला गया। सं० १८७० में लाइसेंस लेकर प्रचारकार्य के लिये पादरियों को आने की अनुमति मिल गई। उसी समय कलकत्ते में एक बिशप और चार पादरी नियुक्त हुए। पादरियों ने पुस्तकें प्रकाशित करके तथा उपदेशों आदि के द्वारा प्रचार-कार्य करके और साथ ही प्रलोभन भी देकर ईसाई मत को फैलाने की चेष्टा की। लार्ड बेंटिक ने सती प्रथा बंद कर दी। धीरे धीरे अँगरेजी शिक्षा का प्रचार होने लगा। बेंटिक ने अँगरेजी का प्रचार सरकारी नीति का एक अंग बना दिया। संस्कृत और फारसी का निरादर किया जाने लगा। उर्दू अदालती भाषा बन गई और हिंदी को राजाश्रय न मिल सका। अँगरेजी के साथ साथ इस देश में पाश्चात्य भावों का भी प्रवेश

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

हुआ। जनता पर अँगरेजों की रहन-सहन और आचार-विचार का भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। नए आवेश में देश की बहुत सी अच्छी बातें भी बुरी और असभ्यतापूर्ण मानी जाने लगीं। इस प्रकार देश पर अँगरेजों की मानसिक विजय भी चलती रही जिसने राजनीतिक विजय को खूब दृढ़ बना दिया।

उत्तर काल

देशी राज्यों के प्रति अँगरेजों की नीति और ईसाई मत के प्रचार का फल यह हुआ कि सं० १९१४ में भारतीयों की ओर से प्रबल विद्रोह की आग धधक उठी। परंतु संघटन के अभाव और शक्ति की विशृंखलता के कारण विद्रोह सफल न हो सका। परिणाम-स्वरूप सं० १९१५ से भारत ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया और कंपनी का राज्य उठ गया। उत्तरी और दक्षिणी भारत का भेद मिट गया और सारे देश में एक प्रकार की शासननीति काम में लाई जाने लगी। महारानी विक्टोरिया की प्रसिद्ध घोषणा से सरकारी नौकरियों में जाति-भेद उठा देने, धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा करने और देशी नरेशों के अधिकार बनाए रखने का वचन दिया गया। अँगरेजी शिक्षा के लिये यूनीवर्सिटियाँ स्थापित की गईं जिनसे राजनीतिक भावों की जागर्ति हुई और थोड़ा बहुत शिक्षा-प्रचार भी हुआ, पर अधिकतर अँगरेजी रीति-नीति की स्थापना को ही सहायता मिली।

राजनीतिक स्थिति

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

सामाजिक अव्यवस्था के उस युग में बंगाल के प्रसिद्ध राजा राममोहन राय ने जो कार्य किया, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। अविद्यांधकार में डूबे हुए देश को ज्ञानालोक प्रदान करने का बहुत बड़ा श्रेय उनको है। उनके कुछ समय उपरांत स्वामी दयानंद के आविर्भाव से उत्तर भारत में एक नवीन जातीय चेतना का अभ्युदय हुआ और ईसाइयों तथा मुसलमानों के धर्मप्रचार को बहुत कुछ धक्का पहुँचा। उस समय साधारण हिंदू जनता का यही विश्वास हो रहा था कि हमारी रीति-नीति, हमारी सभ्यता और संस्कृति तथा हमारा धर्म, सब मुसलमानों और ईसाइयों के सामने तुच्छ हैं। स्वामी दयानंद ने इस भ्रांत धारणा का समूल विनाश कर दिया और हिंदू जनता को अपने अमर भांडार उन वेदों की ओर आकर्षित किया जो संसार के उच्चतम ज्ञान के निदर्शक हैं और इस देश के अतीत गौरव के अमिट स्मृति-चिन्ह हैं। स्वामी दयानंद के उद्योग से हिंदी भाषा का प्रचार थोड़ा-बहुत बढ़ा और संस्कृत साहित्य के पुनरवलोकन तथा अनुशीलन की प्रवृत्ति भी बढ़ी।

सामाजिक अवस्था

समाचारपत्रों के प्रचार से राजनीतिक, सामाजिक आदि आंदोलनों से जनता परिचित होने लगी और उसका इधर मनो-योग भी हुआ। इसी समय भारत की राजनीतिक आवश्यकताएँ प्रकट करने के लिये नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसमें तत्कालीन बड़े बड़े लोगों ने सहयोग दिया। लार्ड रिपन के

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

समय से ही स्थानीय शासन में भारतीयों को सम्मिलित किया जाने लगा था। केंद्रीय तथा प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं में हिंदुस्तानी सदस्य चुने जाने लगे। रेल, तार, डाक आदि से भी सुविधाएँ बढ़ीं और समस्त भारत में एक राष्ट्रीयता का भाव उदय हुआ। सं० १९६२ में बंग विच्छेद के प्रश्न पर यह भाव स्पष्ट देख पड़ा था। राजनीतिक आंदोलन की उन्नति देखकर लार्ड मार्ले को कुछ सुधारों की व्यवस्था करनी पड़ी, परंतु उतने सुधार से उन्नतिशील राजनीतिक दल को संतोष नहीं हुआ। सं० १९७१ में महायुद्ध के प्रारंभ हो जाने पर समस्या और भी जटिल हो गई, परंतु तत्कालीन अँगरेज राजनीतिज्ञों ने बड़ी बड़ी आशाएँ दिलाकर भारत की सहानुभूति प्राप्त की और भारत ने धन-जन से महायुद्ध में अँगरेजों की पूरी सहायता की। परंतु युद्ध समाप्त हो जाने पर भारत की आशाएँ पूरी नहीं हुईं वरन् पंजाब के प्रसिद्ध हत्याकांड जैसे अत्याचार हुए और पाशविक शक्ति की सहायता से भारतीयों की आकांक्षाओं का दमन किया गया। फलतः तीव्र प्रतिकार का आरंभ हुआ। इस प्रतिकार को महात्मा गांधी के प्रसिद्ध असहयोग आंदोलन ने अहिंसात्मक बना रखा। संसार के इतिहास में इस प्रकार के अहिंसात्मक अस्त्रों का प्रयोग प्रायः नवीन है। देश में चारों ओर उद्वेगपूर्ण जागर्ति देख पड़ती है, पर भविष्य अब तक अंधकार की गोद में है।

राजनीतिक क्षेत्र की नवीन जागर्ति ने इस समय जो चकाचौंध सी उत्पन्न कर दी है, उसके कारण हम राष्ट्र के अन्य

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

उद्योगों को कम देख पाते हैं, पर हमको यह स्मरण रखना चाहिए कि राजनीति तो राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति का एक अंग मात्र है, वही सब कुछ नहीं है। राष्ट्र की चेतना अकेली राजनीति की ओर झुककर बहुत शुभ परिणाम नहीं उपस्थित कर सकती। उसका विकास प्रत्येक क्षेत्र में होना चाहिए। हमको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि आधुनिक भारतीय मनोवृत्ति यद्यपि राजनीति की ओर विशेष उन्मुख है, पर अन्य दिशाओं में भी प्रशंसनीय और संतोषप्रद उद्योग हो रहे हैं। हमारा विशेष संबंध साहित्य से है और हम यह स्वीकार करते हुए बड़े प्रसन्न हो रहे हैं कि इस समय हिंदी साहित्य के अनेक अंगों की बड़ी सुंदर पुष्टि हो रही है। हिंदी को राष्ट्रीय भाषा कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ है, और महात्मा गांधी तथा अन्य बड़े बड़े नेताओं के प्रयत्न से इसका देशव्यापी प्रचार हो रहा है। यदि हिंदी साहित्य के सभी अंगों का विकास इसी प्रकार होता रहा और यदि इसकी व्यापकता और सौष्ठव को मानकर देश ने इसको राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया, तो वह दिन दूर नहीं है जब हिंदी भाषा का साहित्य भी इस देश में व्यापक होकर राष्ट्र के प्रगतिशील भावों और विचारों का अभिव्यंजन कर सकेगा और संसार के अन्य श्रेष्ठ और बड़े साहित्यों के समकक्ष होकर मानव समाज के लिये कल्याणकर और आदरणीय सिद्ध होगा।

सर्वतोमुखी प्रगति

---

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

तीसरा अध्याय

वीरगाथा काल

हिंदी साहित्य का आरंभ

हिंदी साहित्य के आदि युग के संबंध में इतिहासवेत्ताओं तथा भाषाशास्त्रियों ने अब तक जितनी खोज की है वह विशेष संतोषजनक नहीं कही जा सकती। यद्यपि यह सत्य है कि हिंदी की उत्पत्ति अपभ्रंश भाषाओं के अनंतर हुई, परंतु इस अपभ्रंश-परंपरा का कब अंत हुआ और कब हिंदी पहले पहल प्रयोग में आई, इसका पता निश्चित रीति से अब तक नहीं लग सका है। भाषाएँ क्रमशः एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित होती हैं और यह परिवर्तन या विकास उनकी उत्पत्ति से ही आरंभ होता है। इस अवस्था में हिंदी की उत्पत्ति का ठीक ठीक काल निश्चित करना असंभव है। परंतु साहित्य के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता। जब भाषाएँ कथ्य अवस्था से निकलकर साहित्य अवस्था में आती हैं तभी से उनके साहित्य का आरंभ माना जा सकता है। पर इस दिशा में भी अभी तक पूरी पूरी खोज नहीं हुई है। हिंदी के कुछ इतिहासलेखकों ने उसके आदि युग का प्रारम्भ विक्रम की सातवीं शताब्दी से माना है; और अपने मत का समर्थन अलं-

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कार तथा रीति-संबंधिनी एक ऐसी पुस्तक के नामोल्लेख से किया है जो अब तक अप्राप्य है तथा जिसके एक भी उद्धृत अंश के दर्शन अब तक किसी को नहीं हुए हैं। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि विक्रम की आठवीं, नवीं तथा दसवीं शताब्दियों में प्राकृत अथवा अपभ्रंश की पुस्तकें लिखी जाती थीं, और उनमें से अनेक पुस्तकें तथा पद्य हमें इस समय भी प्राप्य हैं। अतः हम कह सकते हैं कि हिंदी की उत्पत्ति अपभ्रंश काल के समाप्त होते ही विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग हुई होगी। जिस समय अपभ्रंश साहित्य अपने आसन से क्रमशः च्युत हो रहा था, उस समय हिंदी संभवतः उस आसन को प्राप्त करने के लिये उन्मुख हो रही थी। अतएव हिंदी भाषा के बोल-चाल के प्रयोग के आरंभ तथा उसके साहित्यनिर्माण में प्रयुक्त होने में अवश्य ही कुछ अंतर रहा होगा। ग्यारहवीं शताब्दी से हिंदी साहित्य की जो शृंखला चली, वह बीच में कहीं टूटी नहीं, बराबर अब तक चली चलती है।

ग्रंथों का अभाव

ऐतिहासिक अनुसंधान से अब तक इस युग की जितनी पुस्तकों का पता लगा है, एक तो उनकी संख्या बहुत थोड़ी है और दूसरे उनमें प्रक्षिप्त अंश की इतनी अधिकता है कि तत्कालीन रचनाओं को पीछे की रचनाओं से अलग करना कठिन ही नहीं वरन् कभी कभी तो सर्वथा असंभव हो जाता है। कुछ पुस्तकों में तो इतिहास की तिथियों तथा घटनाओं का इतना अधिक विरोध

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मिलता है कि उन्हें सम-सामयिक रचना मानने में बहुत ही असमंजस होता है। इन पुस्तकों की भाषा भी इतनी बे-ठिकाने और अनियमित है कि तथ्य-निरूपण में उसकी भी सहायता नहीं ली जा सकती। ऐसी अवस्था में हमको बहुत कुछ अनुमान पर ही अवलंबित रहना पड़ता है क्योंकि अन्य उपलब्ध साधनों से हम निश्चित उद्देश तक नहीं पहुँच सकते।

अभाव के कारण

जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि हिंदी साहित्य के आदि काल के लगभग तीन चार सौ वर्षों में इतनी थोड़ी रचनाएँ क्यों हुई तब एक ओर तो हमारा ध्यान अब तक के अधूरे साहित्यिक अनुसंधान पर जाता है और दूसरी ओर तत्कालीन परिस्थिति पर भी हमारी दृष्टि जाती है।

राजनीतिक स्थिति

वह युग घोर राजनीतिक हलचल तथा अशांति का था। महमूद गजनवी के आक्रमणों का यही युग था और शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने भी इसी काल में भारत-विजय के लिये प्रयत्न किए थे। पहले तो इस देश पर विदेशियों के आक्रमण, स्थायी अधिकार प्राप्त करके शासन करने के उद्देश से नहीं, केवल यहाँ की अतुल संपत्ति लूट ले जाने की इच्छा से, हुआ करते थे। महमूद गजनवी ने इसी आशय से सत्रह बार चढ़ाई की थी और वह देश के विभिन्न स्थानों से विपुल संपत्ति ले गया था। परंतु कुछ समय के उपरांत आक्रमणकारियों के लक्ष्य में परिवर्तन हुआ।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वे कुछ तो धर्मप्रचार की इच्छा से और कुछ यहाँ की सुख-सम्मृद्धिशाली अवस्था तथा विपुल धन-धान्य से आकृष्ट होकर इस देश पर अधिकार जमाने की धुन में लगे। यहाँ के राजपूतों ने उनके साथ लोहा लिया और वे उनके प्रयत्नों को निष्फल करके उन्हें बहुत समय तक पराजित करते रहे, जिससे उनके पैर पहले तो जम नहीं सके; पर धीरे धीरे राजपूत शक्ति अंतर्कलह से क्षीण होती गई और अंत में उसे इस्लामी शक्ति के प्रवल वेग के आगे सिर झुकाना पड़ा।

सामाजिक स्थिति

राजनैतिक हलचल के इस भीषण युग में देश की सामाजिक स्थिति कितनी शोचनीय हो गई थी, इस पर कम लोग ध्यान देते हैं। जब से गुप्त साम्राज्य का अंत हुआ था और देश अनेक छोटे छोटे टुकड़ों में बँट गया था, तब से हर्षवर्धन के स्थायी राजत्वकाल के अतिरिक्त कई शताब्दियों तक सारे देश को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न हुआ ही नहीं। उलटे गृह-कलह की निरंतर वृद्धि होती गई और विक्रम की नवीं, दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियों में यह भीषण दशा अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई। स्वयंवरों में अपने अपने शौर्य का प्रदर्शन करना एक साधारण बात थी। कभी कभी तो केवल अपना बल दिखलाने या मन बहलाने के लिये ही अकारण लड़ाई छेड़ दी जाती थी। विप्लवों और युद्धों आदि का यह अनंत क्रम समाज के लिए बहुत ही हानिकर सिद्ध हुआ। जो जीवन किसी समय ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत तथा

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

विविध कलाओं का आविर्भावक था, वह अविद्यांधकार में पड़कर अनेक अंधविश्वासों का केंद्र वन गया। जो लोग आसमुद्र-क्षितीशों के साम्राज्य में सुख-समृद्धिपूर्वक निवास करते थे, वे अपनी रक्षा तक कर सकने में असमर्थ हो गए। सोमनाथ पर मुसलमानों के आक्रमण का प्रतिकार न कर मंदिर में छिपे रहना और अनंगपाल के हाथी के संयोगवश पीछे घूम पड़ने पर सारी सेना का भाग खड़ा होना हिंदुओं के तत्कालीन चरम पतन का सूचक है। यद्यपि अन्य स्थानों में प्रबल वीरता प्रदर्शित करने के अनेक ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं, परंतु फिर भी जो समाज अपना भला बुरा तक पहचानने में असमथ हो जाता है और जो अपने विलासी तथा अदूरदर्शी शासकों के ही हाथों का पुतला वन जाता है उसका कल्याण कब तक हो सकता है। फल यह हुआ कि साधारण जनता तो ;तत्कालीन नृपतियों को आत्मार्पण करती गई, और अपरिणामदर्शी नृपतियों ने घर में ही वैर तथा फूट के वे बीज बोए जिनका कटु फल देश तथा जाति को चिरकाल तक भोगना पड़ा।

स्थिति के अनुरूप साहित्य

देश के जिस भूभाग में जिस समय ऐसी अशांति तथा अंधकार का सामाज्य छाया हुआ था, उसी भूभाग में लगभग उसी समय अपभ्रंश भाषाओं से उत्पन्न होकर हिंदी साहित्य अपना शैशव काल व्यतीत कर रहा था। हिंदी की इस शैशवावस्था मेंश देकी जैसी स्थिति थी, उसी के अनुरूप उसका साहित्य भी विकसित हुआ। भीषण हलचल तथा घोर अशांति के उस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

युग में वीर गाथाओं की ही रचना संभव थी, साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति उस काल में हो ही नहीं सकती थी। हिंदी के आदि युग में केवल वीररस की कविताएँ मिलती हैं।

हिंदी में वीर गाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं—कुछ तो प्रबंध काव्यों के रूप में और कुछ वीर गीतों के रूप में। हिंदी की

प्रबंध काव्य

वीर गाथाओं में प्रबंध रूप से सबसे प्राचीन ग्रंथ, जिसका उल्लेख मिलता है, दलपति विजय का खुमानरासो है। ऐसा कहा जाता है कि इसमें चित्तौड़ के दूसरे खुम्माण (वि० सं० ८७०-९००) के युद्धों का वर्णन था। इस समय इस पुस्तक की जो प्रतियाँ मिलती हैं उनमें महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन है। संभव है कि यह प्राचीन पुस्तक का परिवर्धित संस्करण हो अथवा उसमें पीछे के राणाओं का वर्णन परिशिष्ट रूप से जोड़ा गया हो।

वीर गाथा संबंधी प्रबंध काव्यों में दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक चंद बरदाई कृत पृथ्वीराजरासो है। पृथ्वीराजरासो में युद्धों की प्रधानता के साथ ही शृंगार की प्रचुरता भी की गई है। वीरों को युद्ध के उपरांत विश्रामकाल में मनबहलाव के लिये प्रेम करने की आवश्यकता होती है, और काव्यों में भी रसराज शृंगार के बिना काम नहीं चल सकता। इसी विचार से अन्य देशों में, ऐसे वीर काव्यों में, युद्ध और प्रेम की परंपरा प्रतिष्ठित हुई थी। पृथ्वीराजरासो आदि वीर काव्यों में भी बीच बीच में शृंगार की आयोजना की गई है और वीरों के आमोद-काल में

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

शृंगार-मूर्तिमती रमणियों का उपयोग किया गया है। कभी कभी तो पारस्परिक विद्वेष की वृद्धि तथा तत्संभव युद्ध के कारण-स्वरूप राजकुमारियों के स्वयंवर कराए गए हैं, और इस प्रकार वीरता के प्रदर्शन के अवसर निकाले गए हैं।

यह विशालकाय ग्रंथ हिंदी का प्रथम महाकाव्य समझा जाता है और इसके रचयिता चंद बरदाई पृथ्वीराज के सम-कालीन बतलाये जाते हैं, परंतु अपने वर्तमान रूप में यह किसी एक काल की अथवा किसी एक कवि की कृति नहीं जान पड़ता। इनमें आए हुए संवतों तथा घटनाओं के आधार पर, साथ ही अनेक बाह्य साक्ष्यों की सहायता से, इस ग्रंथ के रचनाकाल का निर्णय करने में अनेक विद्वानों ने बहुत कुछ अनुसंधान किया है; परंतु उनकी परस्पर विभिन्न तथा विपरीत सम्मतियों को देखते हुए ठीक ठीक कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि इसमें बहुत प्राचीन काल से लेकर प्रायः आधुनिक काल तक की हिंदी में बने हुए छंद मिलते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि इसमें क्षेपक बहुत हैं। चंद बरदाई नाम के किसी कवि का पृथ्वीराज के दरबार में होना निश्चित है, और यह भी सत्य है कि उसने अपने आश्रयदाता की गाथा विविध छंदों में लिखी थी; परंतु समयानुसार उस गाथा की भाषा तथा उसके वर्णित विषयों में बहुत कुछ हेर फेर होते रहे और इस कारण अब उसके प्रारंभिक रूप का पता लगाना असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन अवश्य हो गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

सारांश यह कि वर्तमान रूप में पृथ्वीराजरासो में प्रक्षिप्त अंश बहुत अधिक है पर साथ ही उसमें बीच बीच में चंद के छंद बिखरे पड़े हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इन छंदों का संग्रह, संकलन या संपादन संभवतः संवत् १६३६ और १६४२ के बीच में हुआ था। उसी समय बहुत कुछ कथानक बढ़ा घटाकर इन छंदों को ग्रंथ रूप दिया गया, और पीछे तो न जाने कितना और अधिक जोड़ तोड़कर उसका वर्तमान रूप प्रस्तुत किया गया।

वीरगाथा काल के प्रबंध काव्यों के रचयिताओं में भट्ट केदार का जिसने जयचंदप्रकास, मधुकर का जिसने जयमयंकजस-चंद्रिका, सारंगधर का जिसने हम्मीर काव्य और नल्लसिंह का जिसने विजयपालरासो लिखा, उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रकाशित होता है कि इस प्रकार के काव्यों की परंपरा बहुत दिनों तक चली थी; पर राजपूताने में इस प्रकार की प्राचीन पुस्तकों की खोज न होने तथा अनेक ग्रंथों के उनके मालिकों के मोह, अविवेक अथवा अदूरदर्शिता के कारण अँधेरी कोठरियों में बंद पड़े रहने के कारण इस परंपरा का पूरा पूरा इतिहास उपस्थित करने की सामग्री का सर्वथा अभाव हो रहा है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, प्रबंध-मूलक वीर काव्यों के अतिरिक्त उस काल में वीर गीतों की रचनाएँ भी हुई थीं।

गीत काव्य

नरपति नाल्ह रचित वीसलदेवरासो तथा जगनिक-कृत आल्हखंड के वीर गीतों की बहुत कुछ ऐसीही अवस्था है।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वीसलदेवरासो की रचना, वीर गीत की शैली पर, विक्रम संवत् १२१२ में हुई थी। इसका रचयिता नरपति नाल्ह नामक कवि अपने आश्रयदाता वीसलदेव का समकालीन और संभवतः राजकवि था। वीसलदेव उपनाम धारण करनेवाले विग्रहराज चतुर्थ बड़े वीर क्षत्रिय नृपति थे और उन्होंने इस्लामी शक्ति के प्रतिकूल सफलतापूर्वक कई युद्ध किये थे। परंतु उनकी इस गाथा में उनके युद्धों आदि का वर्णन नहीं है। इसमें जैसलमेर की राजकन्या राजमती से उनके विवाह करने और विवाहोपरांत अपनी नवविवाहिता पत्नी की किसी बात से चिढ़कर उड़ीसा चले जाने का उल्लेख है। अनेक वर्षों के वाद राजमती के संदेश भेजने पर उनके ससम्मान लौटने और लौटकर अपने कुटुंबियों से आनंदपूर्वक मिलने तथा फिर से राज्य-सिंहासन ग्रहण करने के साथ कथा का अंत हो जाता है।

इस प्रेम-प्रसंग को वीर गीत स्वीकार करने में कुछ विद्वानों को संकोच होता है। उनका यह संकोच बहुत अंशों में ठीक भी है, परंतु स्मरण रखने की बात यह है कि वीर गीतों में वीरों की जीवनगाथाएँ नहीं होतीं, वरन् जीवन की किसी साधारण अथवा असाधारण घटना का चित्रण मात्र होता है। वे सदा वीररसात्मक ही नहीं हो सकते, क्योंकि वीरों का युद्ध से अभिन्न संबंध नहीं रहता, वीरों के हृदय में यद्यपि उत्साह सदा उपस्थित रहता है, परंतु इसका यह आशय नहीं है कि वे निरंतर युद्ध ही करते रहें। उनके जीवन में हृदय की कोमल वृत्तियों का प्रदर्शन

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

भी हुआ करता है, और वीसलदेवरासो में ऐसी ही वृत्तियों का चित्रण किया गया है। यह वीसलदेवरासो की एक विशेषता है कि प्रेम-प्रधान होने पर भी उसे वीर गीत कहे जाने का गौरव मिला है।

अपने उल्लिखित संवतों के आधार पर तो यह वीसलदेव की सम-सामयिक रचना ठहरती है, पर अन्य वीर गीतों की भाँति इसके भी अनेक मौखिक संस्करण हुए होंगे। इसके कथानक में भोज, माघ, कालिदास आदि नाम ऐसे घुस गए हैं कि इस गाथा के वीसलदेव के जीवनकाल में उसके दरबारी कवि द्वारा रचे जाने में संदेह होने लगता है, परंतु इन अंशों को प्रक्षिप्त मान लेने से शेषांश को नाल्हरचित स्वीकार किया जा सकता है।

आल्हखंड

कुछ विद्वानों ने इसे चद बरदाई कृत पृथ्वीराजरासो ग्रंथ का ही एक खंड बतलाया है और इस दृष्टि से इसे स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में ग्रहण नहीं किया है; परंतु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। पृथ्वीराजरासो तथा आल्हखंड में सबसे प्रधान भेद यह है कि पहला ग्रंथ दिल्ली के अधिपति पृथ्वीराज के दरबारी कवि का लिखा होने के कारण उसके कृत्यों को बहुत अधिक उत्कर्ष प्रदान करता है; परंतु आल्हखंड में यह बात नहीं पाई जाती। इस वीर गीत में न तो पृथ्वीराज के चरित की प्रधानता और न उसकी वीर कृतियों की प्रशसा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

ग्रंथ प्राचीन रूप में जगनिक का लिखा हुआ था जो महोबे के चंदेल शासक परमाल के दरबार में रहता था। यह चंदेल शासक पृथ्वीराज का समकालीन और कन्नौज के अधिपति जयचंद का मित्र तथा सामंत था।

इस पुस्तक में प्रधानतः आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) नामक वीर क्षत्रियों तथा साधारणतः उनके अनेक भाइयों और कुटुंबियों की वीर गाथाएँ हैं। आल्हा और ऊदल बनाफर शाखा के क्षत्रियों के वंशज थे और महोबे के तत्कालीन चंदेल अधिपति परमाल के सामंतों तथा सेनापतियों में थे। यद्यपि परमाल अशक्त तथा भीरु शासक था परंतु उसकी स्त्री मल्हना अपने वीर सामंतों की सहायता से कई बार पृथ्वीराज तक के आक्रमणों को विफल करने में समर्थ हुई थी। आल्हा, ऊदल, लाखन, सुलखे आदि वीर भ्राताओं की धाक तत्कालीन छोटे छोटे राज्यों पर तो थी ही, कन्नौज जैसे विस्तृत सामाज्य का अधिपति जयचंद भी उनकी वीरता के आगे सिर झुकाता था। आल्हखंड के वीर गीतों में इन्हीं वीर भ्राताओं के अनेक विवाहों तथा प्रायः बावन लड़ाइयों का वर्णन है। यद्यपि इस पुस्तक में युद्धों का जितना विशाल रूप प्रदर्शित किया गया है, उसमें बहुत कुछ अतिशयोक्ति भी है, परतु यह निश्चित है कि महोबे के इन वीर सरदारों ने सफलतापूर्वक अनेक युद्ध किए थे और उनमें विजयी होकर उन्होंने राजकन्याओं का अपहरण भी किया था। पुस्तक के अंत में अत्यन्त करुणाजनक दृश्य उपस्थित होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

सब वीर बनाफर युद्ध में मारे जाते हैं, उनकी रानियाँ सती होने के लिये अग्नि की शरण लेती हैं और बचे हुए केवल दो व्यक्ति, आल्हा और उसका पुत्र इंदल, गृह परित्याग कर किसी कजरी-बन में जा बसते हैं। इस वीर गीत में अनेक युद्धों का वर्णन बहुत कुछ एक ही प्रकार से हुआ है, साथ ही इसमें अनेक भौगोलिक अशुद्धियाँ भी पाई जाती हैं; परंतु साधारण पाठकों के लिये इसके वर्णनों में बड़ा आकर्षण है। यद्यपि इसमें साहित्यिक गुणों की बहुत कुछ न्यूनता पाई जाती है, पर उत्तर भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में इसका प्रचार है। इसमें वर्णित युद्धों की भयानकता यद्यपि बहुत कुछ बढ़ा-चढ़ाकर अंकित की गई है; परंतु युद्ध हुए अवश्य थे और उनमें वीर बनाफरों की अनेक बार विजय भी हुई थी। यद्यपि जगनिक-कृत आल्हखंड अब अपने पूर्व रूप में नहीं मिलता, और उसके आधुनिक संस्करणों में भाषा की नवीनता तथा घटनाओं का प्रक्षेप प्रत्यक्ष देख पड़ता है फिर भी यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है।

उस युग की इन प्रतिनिधि रचनाओं के उपर्युक्त विवरण से हम वीर गाथाओं के विभिन्न स्वरूप समझने में थोड़ा बहुत समर्थ हो सकते हैं, क्योंकि इनमें प्रायः वे सभी विशेषताएँ आ जाती हैं जिनको हम उस काल की अन्य कृतियों में देखते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि उपर्युक्त वीर गाथाओं में वर्णित चरित बहुत कुछ सच्चे वीरों के होने के कारण हमारे लिये विशेष आकर्षण रखते हैं और इसी लिये वे रक्षित भी रह सके

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

हैं; परंतु कुछ गाथाएँ ऐसी भी हैं जिनमें वर्णित वीरों की वीरता पुस्तकों तक ही परिमित रही है और जिनके संबंध में इतिहास प्रायः मौन जान पड़ता है। ऐसी गाथाओं में से बहुत सी लुप्त हो गई हैं और कुछ राजदरबारों के पुस्तकालयों में पड़ी हुई हैं। जनता ने ऐसी रचनाओं को बहुत कम ग्रहण किया, अथवा वह उन्हें थोड़े ही दिनों में भूल गई। आज भी ऐसी गाथाओं की परंपरा कुछ राजाओं के यहाँ चली जा रही है, परंतु उनसे न तो साहित्य की श्रीवृद्धि होती है और न उनका प्रचार ही होता है।

इस युग के अंतिम कवि सूर्यमल्लजी ने वंशभास्कर नामक एक बृहत्काय ग्रंथ लिखकर अनेक महावीरों की वीरगाथाओं का संरक्षण कर दिया है। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से ग्रंथ में भी वे ही दोष मिलते हैं जो अन्य ग्रंथों में पाए जाते हैं। उन्होंने भी किंवदंतियों को ही आधार-स्वरूप मानकर इस ग्रंथ की रचना की है, परंतु इसमें संदेह नहीं कि इस ग्रंथ से सूर्यमल्लजी की विद्वत्ता, प्रतिभा और कवित्व-शक्ति का पूरा परिचय मिलता है।

वीर काव्य के साथ ही साथ हमारे साहित्य के इतिहास में एक धारा और बहती रही जिसका पाट आध्यात्मिकता के जल से भरा था।

धार्मिक लहर

विदेशियों के भीषण आक्रमणों से भी भारतीय योगियों की शांति भंग नहीं हुई। उनके यम-नियम, आसन-प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि बिना किसी विघ्न-बाधा के चलते रहे। बाहरी दुनिया को छोड़कर ध्यानावस्थित होकर वे भीतरी

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

दुनिया को देखते रहे। आत्मा की स्वतंत्रता के आगे देश की स्वतंत्रता का महत्त्व उनके मन में बैठ नहीं सकता था। आत्मा को परतंत्रता में डालने के बहुत से उपादान उस समय की स्थिति में विद्यमान थे।

योगियों का यह संप्रदाय, जो महात्मा गोरखनाथ के गुरु मत्स्येंद्रनाथ से आरंभ होकर फैला, हठयोगियों का संप्रदाय कहलाता है। हठयोग हिंदी का आश्रय लेकर अपनी स्वतंत्र सत्ता और भी अधिक प्रतिष्ठित कर सका। योग-संबंधी अन्य संप्रदाय संस्कृत, पाली तथा प्राकृत आदि भाषाओं का आधार लेकर बढ़े; परंतु हठयोग की अभिव्यक्ति हिंदी भाषा द्वारा ही हुई।

गुरु गोरखनाथ का यह हठ-वादी योग-संप्रदाय कबीर आदि परवर्ती साधकों के मार्ग से भिन्न है। इस योगाश्रयी शाखा तथा

योग-मार्ग और निर्गुण-मार्ग में भेद

कबीर की ज्ञानाश्रयी शाखा में सबसे प्रधान अंतर यह है कि योग-मार्ग उपाय या आचरण या जीवन की साधना का मार्ग है, जो उन साधनाओं को पार करता हुआ अलौकिक सत्ता की ओर ले जाता है; परंतु ज्ञानमार्ग योग की चरम-कोटि पर पहुँचकर ही प्रतिष्ठित होता है। जब योगी अपनी साधना के परिणाम-स्वरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब योग की क्रिया छूट जाती है। कबीर ने स्थान स्थान पर योग या साधना की प्रशंसा की है; परंतु जहाँ वे ज्ञानी की दृष्टि से देखते ~~थे~~ वहाँ योग

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

की निंदा भी करते हैं। इस योग की निंदा से उनके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो मिथ्या योगियों की प्रवंचना से जनता को सावधान करना और दूसरे तात्त्विक रूप से भी योग या क्रिया मात्र का मायिक रूप सिद्ध करना। यद्यपि कबीर स्वयं अपने को योगी समझते थे तथापि ज्ञान के उच्च स्तर से वे योग की विगर्हणा भी करते थे।

गुरु गोरखनाथ ने हिंदी के ही द्वारा अपने योग-मार्ग के प्रसार का अनुष्ठान किया। उनके दिल की मस्ती सीधे गानों के रूप में व्यक्त हुई जिनमें कैवल्यानुभूति के आनंदोद्रेक के साथ साथ उन उपायों तथा क्रियाओं की भी महिमा गाई गई जिनके द्वारा उसकी प्राप्ति संभव हुई थी।

योग-धारा

गोरखनाथ अपने ढंग के एक ही कवि नहीं हुए हैं। उनके साथ हिंदी साहित्य की एक धारा-विशेष का जन्म होता है, जो लगातार शताब्दियों तक चलती चली और संभवतः अब भी रुकी नहीं है। इस धारा का पूर्ण दर्शन कराने का श्रेय डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल को है जो गोरखनाथ का समय विक्रम के ग्यारहवें शतक में मानते हैं। श्री राहुल सांकृत्यायन तथा श्री काशीप्रसाद जायसवाल का मत है कि योग की यह धारा हिंदी-काव्यक्षेत्र में गोरखनाथ के काल के पहले ही से बहती चली आ रही है। वे सरह-पा अर्थात् सरोज-वज्र से इस धारा का आरंभ मानते हैं जिनका समय विक्रमाब्द के आरंभ के आसपास माना जाता है। परंतु

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मैं समझता हूँ कि ऐसा करने से वे हिंदी के क्षेत्र को छोड़कर अपभ्रंश के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। उनकी रचनाओं में से चुन चुनकर जैसे उदाहरण दिए गए हैं वैसे अंश उनकी कविताओं में अधिक नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं है कि हिंदी के वर्तमान रूपों का बनना उस समय आरंभ हो गया था, परंतु इतने ही के आधार पर हम उनकी रचनाओं को हिंदी की नहीं मान सकते। यदि अपभ्रंश और हिंदी में भेद ही न मानें तो बात दूसरी है। परन्तु भाषा-विकास के इतिहास में अलग अलग अवस्थाओं के अलग अलग नामकरण हुए हैं जिनकी मर्यादा की रक्षा, विचारों के सौकर्य तथा स्पष्टता के लिए आवश्यक है। अतएव गोरखनाथ ही से हम हिंदी की योग-धारा का आरंभ मानने को बाध्य हैं।

गोरखनाथ के गुरु मछंदरनाथ ने भी हिंदी में कविता की या नहीं, इसका कुछ पता नहीं। मछंदरनाथ आसाम के रहनेवाले मछुए थे। मछली मारकर अपना निर्वाह करते थे। अभ्यास से ये बड़े प्रसिद्ध योगी हुए और गोरखनाथ सदृश शिष्य को पाकर यश के भागी भी हुए। 'मछंदर गोरखबोध' नाम के एक ग्रंथ में मछंदर और गोरखनाथ का संवाद दिया हुआ है। गोरखनाथ प्रश्न करते हैं और मछंदर उसका उत्तर देते हुए योग का उपदेश देते हैं। यह ग्रन्थ भी मछंदर का न होकर गोरखनाथ का बतलाया जाता है। मीननाथ के नाम से संस्कृत के कुछ ग्रंथों का उल्लेख 'केटेलोगस केटेलेगोरम' में किया गया है; परंतु ये भी मछंदर-

मछंदर और गोरख

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

नाथ के हैं या नहीं, नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जहाँ कुछ लोग मीननाथ और मछंदरनाथ को एक मानते हैं, वहाँ कुछ ऐसे भी हैं जो उन्हें अलग अलग मानते हैं और उनके बीच में भाई भाई अथवा पिता-पुत्र का संबंध स्थापित करते हैं। मछंदर-नाथ नैपाल में अधिदेवता के रूप में पूजे जाते हैं। स्वयं गोरख-नाथ ने हिंदी में कई ग्रंथों की रचना की। सबदी पद, अभै-यात्रा जोग, संख्या-दर्शन, प्राण संकली, आत्मबोध, मछींद्र गोरखबोध, जाती भौरांवली, गोरख-गणेश-संवाद, गोरखदत्त-संवाद, सिद्धांत जोग, ज्ञानतिलक, कंथड़बोध उनके ग्रंथ माने जाते हैं जिनमें कुछ तो—जैसे गोरख-गणेश-संवाद, गोरखदत्त-संवाद तथा कंथड़बोध—स्पष्ट ही उनके नहीं जान पड़ते।

गोरखनाथ की रचनाओं में ससिहर, महियल, पयाल, अज-रावर आदि शब्द उनकी प्राचीनता के द्योतक हैं। इनकी भाषा में कई प्रांतों का प्रभाव दिखलाई देता है।

गोरखनाथ के ही समय में जालंधरनाथ, कणेरीपाव, चौरंगी-नाथ तथा सिद्ध घोड़ाचोली आदिकों ने भी योग-काव्य की रचना की। चौरंगीनाथ और घोड़ाचोली गोरख-नाथ के गुरुभाई थे। जालंधरनाथ मछंदर नाथ के गुरुभाई और कणेरी जालंधर के शिष्य थे। भोटिया परंपराओं में जालंधरनाथ को आदिनाथ की उपाधि दी गई है और वे गोरखनाथ के गुरु मछंदरनाथ के गुरुभाई माने गए हैं। कहते हैं कि तंजूर में इनके मगही भाषा के साथ ग्रंथ मिलते हैं।

जालंधर कणेरी आदि

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कणेरी का असली नाम आर्यदेव था। ये विहार के रहने-वाले थे। भिक्षु होने के बाद कुछ समय तक नालंदा में भी रहे थे। ये नागार्जुन के शिष्य थे। हो सकता है कि मछंदरनाथ से भी इन्होंने उपदेश ग्रहण किया हो।

पृथ्वीनाथ इस धारा में प्रधान हुए। पृथ्वीनाथजी के बाद योग-काव्य की रचना बन्द हो गई हो, सो बात नहीं। परंतु हिंदी के आध्यात्मिक साहित्य-क्षेत्र में उसकी वह प्रधानता न रही जो उस समय तक थी। पृथ्वीनाथजी के पहले ही कबीर ने आध्यात्मिक साहित्य की धारा को एक नया वेग तथा रूप दे डाला था। यही नवीन रूप हिंदी साहित्य-जगत् में निर्गुण काव्य के नाम से प्रसिद्ध है।

इस युग की साधारण प्रगति के अपवाद-स्वरूप कुछ बातें हैं जिन पर ध्यान दिलाना आवश्यक है। इनमें एक यह है कि

खुसरो

खड़ी बोली की कविता के आदि कवि खुसरो की मसनवियों, पहेलियों तथा मुकरियों आदि में हमें खड़ी बोली के प्राथमिक स्वरूप की झलक मिलती है। खुसरो की कविता वीरगाथा काल के अंतिम भाग लगभग चौदहवीं शताब्दी के मध्यकाल की है, और वह तत्कालीन मुसलमानी दरबारों के आश्रय में लिखी गई थी। खुसरों ने अधिकांश कविता फारसी में ही की; पर नवप्रतिष्ठित मुसलिम राज्य के शासकों को देशभाषा से परिचित कराने के लिये उन्होंने खालिकबारी नामक एक पद्यात्मक कोश ग्रंथ की

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

रचना की, जिसमें फारसी शब्दों के हिंदी अर्थ बतलाए गए थे और दिल्ली के आसपास की उस प्रचलित भाषा में अपनी पहेलियाँ भी लिखीं, जो आजकल की खड़ी बोली की जननी या पूर्व रूप कही जा सकती है। खुसरो ने कुछ रचनाओं में फारसी और खड़ी बोली का सम्मिश्रण भी किया था, पर उनमें से केवल एक पद्य अब प्राप्त है। उनके इस कार्य में हम मुसलमानों और हिंदुओं में भाषा संबंधी एकता स्थापित करने के उद्योग की झलक पाते हैं। इन्हीं दोनों जातियों में एकता स्थापित करने के अन्य गंभीर प्रयास हम कबीर आदि पीछे के कवियों में भी देखते हैं। परंतु भाषासाम्य का खुसरो का उद्योग भी कम महत्त्व-पूर्ण नहीं था। खुसरो विजेताओं की जाति के थे और तत्कालीन फारसी कवियों में उनका स्थान बहुत ऊँचा था; क्योंकि उन्होंने अपनी आँखों से गुलाम वंश का पतन, खिलजी वंश का उत्थान और पतन तथा तुगलक वंश का आरंभ देखा था। उनके जीवनकाल में दिल्ली के सिंहासन पर ११ बाद-शाह बैठे, जिनमें ७ की उन्होंने स्वयं सेवा की थी। वे बड़े प्रतिभाशाली और विद्वान् कवि थे। उनकी हिंदी रचनाओं का संग्रह छप भी गया है। यह कहना तो कठिन है कि ये रचनाएँ अपने आदि रूप में प्राप्त हैं; पर फिर भी फारसी के अच्छे कवि का परिमार्जित और व्यवस्थित भाषा (खड़ी बोली) में रचना करना कोई अधिक आश्चर्य की बात नहीं है। पर साथ

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

ही भाषाओं के क्रमिक विकास का ध्यान करके हमें यह कहने में भी संकोच नहीं हो सकता कि अवश्य पीछे से भी इनकी रचनाओं का परिमार्जन हुआ होगा।

गद्य का आविर्भाव

वीरगाथा काल के अंतिम अंश में हमें हिंदी गद्य के आविर्भाव की झलक मिलती है। यद्यपि निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि हिंदी में गद्य-रचना का आरंभ कब से हुआ, पर जितनी छान-बीन अब तक हुई है, उससे हिंदी गद्य का सबसे प्राचीन नमूना गोरखनाथजी के ग्रंथों में मिलता है। गोरखनाथजी का आविर्भाव विक्रम की १४वीं शताब्दी के अंत में हुआ था। अब तक उनके जितने ग्रंथों का पता लगा है, उनमें से एक में भी निर्माणकाल नहीं दिया है, किसी किसी में लिपि-काल दिया है, पर वह है संवत् १८५५ और १८५९। इसमें से एक ग्रंथ गद्य में भी है। यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रंथ की रचना कब हुई, परंतु भाषा में प्राचीनत्व के चिन्ह अवश्य वर्त्तमान हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह ग्रंथ प्राचीन होगा।

प्रगति

उस काल के साहित्य का साधारण दिग्दर्शन कर लेने पर स्वभावतः यह इच्छा होती है कि हम उस युग के भाषा संबंधी विकास का भी निरीक्षण करें और वीरगाथाओं में प्रयुक्त छंदों आदि से भी परिचित हों। साहित्य के भावपक्ष के साथ ही साथ उसका

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

कलापक्ष भी विकसित होता चलता है, और दोनों का संबंध बहुत कुछ घनिष्ठ हुआ करता है।

इस समय हिंदी के एक सामान्य साहित्यिक रूप की प्रतिष्ठा हो गई और साहित्य-ग्रंथों की प्रचुरता होने के कारण उसी की प्रधानता मान ली गई तथा उसमें व्याकरण आदि का नियमित निरूपण भी हो गया। हिंदी के उस साहित्यिक रूप को उस काल में "पिंगल" कहते थे और अन्य रूपों की संज्ञा "डिंगल" थी। 'पिंगल' भाषा में अधिकतर वे विद्वान् रचना करते थे जो अपने ग्रंथों में संयुक्त भाषा तथा व्याकरण-सम्मत प्रयोगों के निर्वाह में समर्थ होते थे। पिंगल की रचनाओं में धीरे धीरे साहित्यिकता बढ़ने लगी और नियमों के बंधन भी जटिल होने लगे। इसके विपरीत डिंगल भाषा का प्रयोग करनेवाले राजपूताने के आसपास के भट्ट, चारण आदि थे जिन्हें न तो भाषा के शुद्ध रूप का ज्ञान था और न उसका प्रयोग करने की आवश्यकता ही थी। पिंगल और डिंगल के इस भेद के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि चंद बरदाई का "पृथ्वीराजरासो" पिंगल भाषा में लिखा गया है और नाल्ह का "वीसलदेवरासो" डिंगल की रचना है।

अमीर खुसरो ने अपनी मसनवियों और पहेलियों में जिस भाषा का प्रयोग किया, उसके संबंध में यहाँ केवल इतना और कह देना पर्याप्त होगा कि वह दिल्ली और आसपास की प्रचलित देशभाषा थी और मुसलमान विजेताओं का केंद्र भी उसी

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

प्रांत में होने के कारण उन्होंने उसको ही ग्रहण किया। पीछे से इसी भाषा में अरबी फारसी के शब्दों को ठूस ठूसकर उसका स्वरूप ही बदल दिया गया और राजभाषा होने के कारण उसके नए स्वरूप की उन्नति भी होती रही। जातीय वैमनस्य ने भी नई भाषा को अधिकाधिक अपरिचित बना देने में सहायता पहुँचाई।

हिंदी की शैशवकाल की रचनाओं में दोहा छंद की सबसे अधिक प्रधानता थी। यद्यपि पृथ्वीराजरासो में सोरठा, छप्पय, कवित्त, पद्धरी आदि प्राकृत काल के तथा साटक, शार्दूलविक्रीड़ित आदि संस्कृत छंद का प्रयोग भी पाया जाता है; परंतु जिस प्रकार संस्कृत में अनुष्टुपों तथा प्राकृत में गाथाओं की ही प्रधानता रही है, उसी प्रकार पुरानी हिंदी का सर्वप्रिय छंद दोहा ही रहा है। पुरानी हिंदी ही क्यों, अपभ्रंशों में भी दोहा का अधिकता से व्यवहार हुआ है और उस काल की मुक्तक रचना के लिये दोहा छंद विशेष उपयोगी जान भी पड़ता है।

वीसलदेवरासो तथा आल्हखंड आदि वीर गीतों के छंदों में एक प्रकार का बंधनरहित मुक्त प्रवाह मिलता है। न तो उनमें अंत्यानुप्रास का ही प्रतिबंध रखा गया है और न संस्कृत के वर्णवृत्तों की सी कठोर नियम-बद्धता आई है। अन्य दृष्टियों से भी वे छंद वीरभावों के अभिव्यंजन तथा भाषा की स्वाभाविकता और स्वच्छंदता के रक्षण में सहायक हुए हैं।

अनुप्रासों आदि के द्वारा भाषा को सजाने तथा आलंकारिक

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

उक्तियों द्वारा भावों को चमत्कारपूर्ण बनाने का जितना प्रयत्न पृथ्वीराजरासो में देख पड़ता है, उतना उस काल की अन्य रचनाओं में कहीं नहीं देख पड़ता। संभवतः यह कार्य पीछे से किया गया है।

औरंगजेब के धार्मिक कट्टरपन के कारण जब हिंदू जाति का अस्तित्व ही संकटापन्न हो गया, तब आत्मरक्षा और प्रतिकार की प्रेरणा से महाराष्ट्र शक्ति का अभ्युदय हुआ। इस शक्ति को संघटित करनेवाले छत्रपति शिवाजी हुए जिनके मार्ग-प्रदर्शन का कार्य समर्थ गुरु रामदास ने किया था। शिवाजी के अतिरिक्त बुंदेलखंड के प्रसिद्ध अधिपति छत्रपाल ने स्थानीय राजपूत शक्ति को उत्तेजित करने का सफल प्रयास किया था। इस प्रकार महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश की शक्ति का जो उत्थान हुआ, उसमें राष्ट्रीयता की पूरी पूरी झलक दिखाई पड़ी। संयोग से इन दोनों राष्ट्रोन्नायकों को भूषण तथा लाल जैसे सुकवियों का सहयोग भी प्राप्त हुआ, जिससे शक्ति-संघटन में बड़ी सहायता मिली।

भूषण और लाल की रचनाओं पर विचार करते हुए हमें यह भूल न जाना चाहिए कि इनका आविर्भाव उस काल में हुआ था जिस काल में रीति-ग्रंथों की परंपरा ही सर्वत्र देख पड़ती थी। नायिका-भेद की पुस्तकों, नखशिख-वर्णनों और शृंगाररस के फुटकर पद्यों का जो प्रबल प्रवाह उस समय चला था, उससे बचकर रहना तत्कालीन किसी कवि के लिये बड़ा ही कठिन था। भूषण और लाल भी उस सर्वतोमुखी प्रवाह से एक-

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

दम बचे न रह सके। यद्यपि भूषण की सभी रचनाएँ प्रायः वीररस की हैं परंतु उन्होंने अपने शिवराजभूषण नामक ग्रंथ में उन रचनाओं को विविध अलंकारों आदि के उदाहरण-स्वरूप रखा है। यह काल-दोष था। उस समय इससे बच सकना असंभव था। इसी प्रकार लाल कवि ने भी यद्यपि वीर व्रत धारण किया था, तथापि विष्णुविलास नामक नायिका-भेद की एक पुस्तक उन्होंने लिख ही डाली। कविवर लाल के छत्रप्रकाश नामक ग्रंथ में प्रसिद्ध छत्रसाल की वीर-गाथा अंकित है, और प्रबंधकाव्य के रूप में होते हुए भी उसकी रचना अत्यंत प्रौढ़ और मार्मिक हुई है। महाकवि भूषण की ही भाँति कविवर लाल के इस ग्रंथ में जातीयता की भावना मिलती है और उनकी इस रचना में शृंगाररस नहीं आने पाया है।

भारत पर ब्रिटिश शासन के प्रतिष्ठित हो जाने पर अँगरेजी की पढ़ाई प्रारंभ हुई है। इसके परिणाम-स्वरूप अँगरेजी शिक्षा-प्राप्त एक दल तैयार हुआ और धीरे धीरे उसमें राष्ट्रीय उन्नति के भाव उदय हुए। राष्ट्रीय उन्नति की कल्पना सर्वतोमुखी थी। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में सुधार का आयोजन होने लगा। यद्यपि अन्य प्रांतों में भी शीघ्र ही राष्ट्रोन्नायकों का प्रादुर्भाव हुआ, पर बंगाल के राजा राममोहन राय ने पथप्रदर्शक का काम किया। हिंदी-भाषा-भाषी प्रांतों में स्वामी

आधुनिक समय की वीर कविताएँ

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

दयानंद का कार्य सर्वथा प्रशंसनीय था। उनके अन्य विचारों से चाहे कोई सहमत हो या न हो, पर इतना तो मानना ही पड़ता है कि सुषुप्त देश को जगाने और गिरी हुई दशा पर ध्यान दिलाने का उनका प्रयत्न हमारे लिये कल्याणकर हुआ। स्वामी दयानंद अँगरेजी भाषा के विद्वान् नहीं थे, फिर भी उनमें देशोन्नति की उच्चाकांक्षा किसी अँगरेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति से कम नहीं थी, और उनका उद्योग तो सर्वाधिक सफल हुआ। हिंदी कविता के क्षेत्र में देशोन्नति संबंधी उत्साहवर्द्धक वीररसात्मक कविता का प्रारंभ स्वामी दयानंद के कुछ काल उपरांत हो गया था; पर वीररस का कोई प्रसिद्ध उल्लेखनीय योग्य कवि नहीं हुआ। इस काल में थोड़ी सी फुटकर रचनाओं में वीरता की अच्छी झलक देख पड़ती है; पर किसी कवि को एकमात्र वीररस की कविता करने का श्रेय नहीं दिया जा सकता। थोड़े समय पीछे महात्मा गांधी के देशव्यापी असहयोग आंदोलन का प्रारंभ हुआ और हिंदी को राष्ट्रभाषा कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ। जब हिंदी राष्ट्रभाषा मानी गई, तब उसमें राष्ट्र के विचारों और आकांक्षाओं की छाप अवश्य मिलनी चाहिए। इधर थोड़े दिनों से हिंदी में वीर कविता भी प्रारंभ हुई है। ये कविताएँ या तो वर्तमान परिस्थिति में प्रोत्साहन के रूप में हैं, या प्राचीन वीरों की प्रशस्तियों के रूप में हैं। आधुनिक समय के वीर कविताकारों के संबंध में यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो कविता लिखकर ही अपने

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठते हैं, वास्तविक कार्यक्षेत्र में साहसपूर्वक प्रवेश करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं दिखाई पड़ती। आजकल ऐसे कवियों की एक अलग श्रेणी बन गई है, जिन्हें हम साहित्यिकों की श्रेणी कह सकते हैं और जिनका राष्ट्र की वर्तमान कार्य-प्रणाली से केवल मौखिक संबंध है। वीर-कविताकारों में उल्लेख योग्य नाम माखनलालजी चतुर्वेदी, बालकृष्णजी शर्मा, गयाप्रसादजी शुक्ल, अनूप, वियोगी हरि, माधव शुक्ल आदि के हैं। लाला भगवानदीन का वीर-पंचरत्न और वियोगी हरि की वीर-सतसई इस प्रकार के काव्यों की अर्वाचीनतम उत्तम कविताएँ हैं। इस प्रकार की आधुनिक रचनाओं का थोड़ा-बहुत प्रभाव राष्ट्रीय जीवन पर पड़ा है, पर अभी इस क्षेत्र में विशेष उन्नति की आवश्यकता है।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

चौथा अध्याय

भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी शाखा

शंकराचार्य के अद्वैत मत और रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत में कोई तात्त्विक अंतर नहीं है। रामानुज के उपरांत भक्ति का एक व्यापक आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिनके मुख्य उन्नायकों में मध्वाचार्य, निंबार्काचार्य, चैतन्य, रामानंद, वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ जैसे महात्मा हुए। इनके स्निग्ध सरस हृदय का अवलंबन पाकर भक्ति की एक प्रखर और पवित्र धारा बह चली। भक्ति की इस धारा में अनेक उपास्य देवों और उपासनाभेदों के रूप में अनेक स्रोतों का प्रादुर्भाव हुआ; परंतु मूल धारा में कुछ भी अंतर न पड़ा, वह एकरस बहती रही। विष्णु, गोपाल, कृष्ण, हरि, राम, बालकृष्ण आदि विभिन्न उपास्य देवों के सम्मिलित प्रभाव से भक्ति अधिकाधिक शक्तिसंपन्न होती गई, साथ ही जनता का विशेष मनोरंजन और दुःख-निवारण भी होता गया। इन अनेक भक्ति-संप्रदायों का हमारे साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा, और वीरगाथा काल की एकांगिता दूर होकर हिंदी में एक प्रकार की व्यापकता और आध्यात्मिकता का समावेश हुआ। मध्य युग का हिंदी साहित्य हिंदी के इतिहास में तो उत्कृष्टता की दृष्टि

भक्ति-प्रवाह

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

से अतुलनीय है ही, उसकी तुलना संसार के अन्य समृद्ध साहित्यों से भी भली भाँति की जा सकती है। हिंदी के इस उत्कर्षवर्द्धन में तत्कालीन भक्ति अभ्युत्थान ने विशेष सहायता पहुँचाई थी।

हिंदी में वैष्णव साहित्य के प्रथम कवि प्रसिद्ध मैथिल-कोकिल विद्यापति हुए जिनकी रचनाएँ उत्कृष्ट कोटि की हुईं। परंतु जब महात्मा रामानंद ने भक्ति को लोकव्यापक बनाकर और जाति-पाँति का भेद मिटाकर जनता की भाषा में अपने उपदेश दिए, तब हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि का विशेष अवसर प्राप्त हुआ और बड़े बड़े महाकवियों के आविर्भाव से उसका उत्कर्ष साधन हुआ। महात्मा रामानंद की शिष्य-परंपरा में एक ओर तो कबीर हुए, जिन्होंने ज्ञानाश्रयी भक्ति का उपदेश देकर एक नवीन संप्रदाय खड़ा किया, और दूसरी ओर कुछ दिनों बाद महात्मा तुलसीदास हुए जिनकी दिव्य वाणी का हिंदी को सबसे अधिक गर्व है। इसी समय भारतीय अद्वैत-वाद तथा सूफी प्रेमवाद के सम्मिश्रण से हिंदी में कुतुबन, जायसी आदि प्रेमगाथाकारों का भी आविर्भाव हुआ जिनकी रचनाओं से हिंदी साहित्य को कम लाभ नहीं पहुँचा। महात्मा वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ की प्रेरणा से सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों का आविर्भाव भी इसी काल में हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर तो कबीर आदि सन्त कवियों की परंपरा चली और दूसरी ओर महात्मा तुलसीदास की राम भक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ। साथ ही

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

चौथा अध्याय

भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी शाखा

शंकराचार्य के अद्वैत मत और रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत में कोई तात्त्विक अंतर नहीं है। रामानुज के उपरांत भक्ति का एक व्यापक आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिनके मुख्य उन्नायकों में मध्वाचार्य, निंबार्काचार्य, चैतन्य, रामानंद, वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ जैसे महात्मा हुए। इनके स्निग्ध सरस हृदय का अवलंबन पाकर भक्ति की एक प्रखर और पवित्र धारा वह चली। भक्ति की इस धारा में अनेक उपास्य देवों और उपासनाभेदों के रूप में अनेक स्रोतों का प्रादुर्भाव हुआ; परंतु मूल धारा में कुछ भी अंतर न पड़ा, वह एकरस बहती रही। विष्णु, गोपाल, कृष्ण, हरि, राम, बालकृष्ण आदि विभिन्न उपास्य देवों के सम्मिलित प्रभाव से भक्ति अधिकाधिक शक्तिसंपन्न होती गई, साथ ही जनता का विशेष मनोरंजन और दुःख-निवारण भी होता गया। इन अनेक भक्ति-संप्रदायों का हमारे साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा, और वीरगाथा काल की एकांगिता दूर होकर हिंदी में एक प्रकार की व्यापकता और आध्यात्मिकता का समावेश हुआ। मध्य युग का हिंदी साहित्य हिंदी के इतिहास में तो उत्कृष्टता की दृष्टि

भक्ति-प्रवाह

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

से अतुलनीय है ही, उसकी तुलना संसार के अन्य समृद्ध साहित्यों से भी भली भाँति की जा सकती है। हिंदी के इस उत्कर्षवर्द्धन में तत्कालीन भक्ति अभ्युत्थान ने विशेष सहायता पहुँचाई थी।

हिंदी में वैष्णव साहित्य के प्रथम कवि प्रसिद्ध मैथिल-कोकिल विद्यापति हुए जिनकी रचनाएँ उत्कृष्ट कोटि की हुईं। परंतु जब महात्मा रामानंद ने भक्ति को लोकव्यापक बनाकर और जाति-पाँति का भेद मिटाकर जनता की भाषा में अपने उपदेश दिए, तब हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि का विशेष अवसर प्राप्त हुआ और बड़े बड़े महाकवियों के आविर्भाव से उसका उत्कर्ष साधन हुआ। महात्मा रामानंद की शिष्य-परंपरा में एक ओर तो कबीर हुए, जिन्होंने ज्ञानाश्रयी भक्ति का उपदेश देकर एक नवीन संप्रदाय खड़ा किया, और दूसरी ओर कुछ दिनों बाद महात्मा तुलसीदास हुए जिनकी दिव्य वाणी का हिंदी को सबसे अधिक गर्व है। इसी समय भारतीय अद्वैत-वाद तथा सूफी प्रेमवाद के सम्मिश्रण से हिंदी में कुतुबन, जायसी आदि प्रेमगाथाकारों का भी आविर्भाव हुआ जिनकी रचनाओं से हिंदी साहित्य को कम लाभ नहीं पहुँचा। महात्मा वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ की प्रेरणा से सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों का आविर्भाव भी इसी काल में हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर तो कबीर आदि सन्त कवियों की परंपरा चली और दूसरी ओर महात्मा तुलसीदास की राम भक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ। साथ ही

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

जायसी आदि की प्रेमगाथाएँ भी रची गईं और महाकवि सूरदास जैसे कृष्ण-भक्त कवियों का संप्रदाय भी चला।

काल की पूर्वापरता का ध्यान रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि विद्यापति ही हिंदी में भक्ति काव्य के प्रथम बड़े कवि हैं।

विद्यापति

उनकी रचनाएँ राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत हैं जिनसे कवि की भावमग्नता का परिचय मिलता है। यद्यपि संयोग शृंगार का वर्णन करते हुए विद्यापति कहीं कहीं असंयत भी हो गए हैं, पर उनकी अधिकांश रचनाओं में भावधारा बहुत ही निर्मल और सरस हुई है। यह सब होते हुए भी विद्यापति के पीछे हिंदी में थोड़े दिनों तक कृष्णभक्ति की कविता नहीं हुई।

विद्यापति के उपरांत हिंदी में दूसरे बड़े भक्त कवि महात्मा कबीरदास हुए जिनकी उपासना निर्गुण उपासना थी और

ज्ञानाश्रयी संत

जिनकी प्रेरणा से हिंदी में ज्ञानाश्रयी भक्त कवियों की एक शाखा चल पड़ी। कबीर नानक, दादू, जगजीवन, सुंदर आदि इस शाखा के प्रधान कवि हुए थे। ये सब संत और महात्मा थे। इन्होंने पारमार्थिक सत्ता की एकता निरूपित करके हिंदुओं और मुसलमानों के द्वेष भाव की निंदा की और दोनों में एकता स्थापित करने का उद्योग किया। ये संत सभी जातियों के थे और उनके उपदेशों में भी जाति-पाँति के भेद मिटाकर "हरि को भजे सो हरि को होई" के आधार पर मानव मात्र की एकता स्थापित करने की चेष्टा की गई। अध्यात्म पक्ष में तो इन संतों ने निर्गुण को ही

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

ग्रहण किया, पर उपासना के लिये निर्गुण में भी गुणों का आरोप करना पड़ा। तात्त्विक दृष्टि से ऐसा करने में कोई हानि नहीं है। उपासना में निर्गुण की प्रतिष्ठा करके और वेदों, पुराणों तथा कुरान आदि की निंदा करके मानो हिंदुओं और मुसलमानों में एकता-स्थापन का दोहरा प्रयत्न किया गया। इन संत कवियों ने लौकिक जीवन को भी अत्यंत सरल, निर्मल और स्वाभाविक बनाने के उपदेश दिए तथा सदाचार आदि पर विशेष जोर डाला। इस सब का फल यह हुआ कि एक सामान्य भक्ति-मार्ग उठ खड़ा हुआ जिसका आधार परोक्ष सत्ता की एकता और लौकिक जीवन की सरलता हुआ। जनता इस ओर बहुत कुछ खिंची।

कबीर

अब तक के अनुसंधानों के अनुसार महात्मा कबीरदास का जन्म संवत् १४५६ और मृत्यु संवत् १५७५ माना जाता है। यद्यपि निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, फिर भी सब बातों पर विचार करने से इस मत के ठीक होने की अधिक संभावना है कि ये ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमास परिवार में लालित पालित हुए। कदाचित् उनका बाल्यकाल मगहर में बीता था और वे पीछे से काशी में आकर बसे थे, जहाँ से अंतकाल के कुछ पहले उन्हें पुनः मगहर जाना पड़ा हो। प्रसिद्ध स्वामी रामानंद को उन्होंने अपना गुरु स्वीकार किया था। कुछ लोगों का यह भी मत है कि उनके गुरु शेख तकी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

नामक कोई सूफी मुसलमान फकीर थे। धर्मदास और सुरत गोपाल नाम के उनके दो चेले हुए। कबीर की मृत्यु के पीछे धर्मदास ने छत्तीसगढ़ में कबीरपंथ की एक अलग शाखा चलाई और सुरत गोपाल काशीवाली शाखा की गद्दी के अधिकारी हुए। कबीर के साथ प्रायः लोई का भी नाम लिया जाता है। संभवतः लोई उनकी पत्नी और कमाल उनका पुत्र था।

कबीर बहुश्रुत थे। उनको सत्संग से वेदांत, उपनिषदों और पौराणिक कथाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान हो गया था परंतु वेदों का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था। योग की क्रियाओं के विषय में उन्हें जानकारी थी। इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, षट्चक्र आदि का उन्होंने उल्लेख किया है, पर वे योगी नहीं थे। उन्होंने योग को भी माया में सम्मिलित किया है। उन्होंने केवल हिंदू और मुसलमान धर्मों का मुख्यतया उल्लेख किया है, पर अन्य धर्मों से भी उनका परिचय था। कबीरदास सरल जीवन के पक्षपाती तथा अहिंसा के समर्थक थे। उन्होंने शास्त्रों की बड़ी निंदा की है।

जैसे कबीर का जीवन संसार से ऊपर उठा हुआ था, वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटि से ऊँचा है। अतएव सीख-कर प्राप्त की हुई रसिकता को उनमें काव्यानंद नहीं मिलता। परंपरा से बँधे हुए लोगों को काव्य-जगत् में भी इंद्रिय-लोलुपता का अखाड़ा खड़ा करना अच्छा लगता है। कबीर ऐसे लोगों की परितुष्टि की परवा कैसे कर सकते थे, जिनको निरपेक्षी के प्रति

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding

होनेवाला उसका प्रेम भी शुष्क लगता है ? आत्मसमर्पण का, जो प्रेम की पराकाष्ठा है, मानो काव्य-जगत् में कोई मूल्य ही नहीं है !

कबीर ने अपनी उक्तियों पर बाहर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा नहीं चढ़ाया है। जो अलंकार उनमें मिलते भी हैं वे उन्होंने खोजकर नहीं बैठाए हैं। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी अर्थ में कला का उनमें सर्वथा अभाव है, परंतु सच्ची कला के लिये तो तथ्य की आवश्यकता है। भावुकता के दृष्टिकोण से कला के आडंबरों के बंधन से निर्मुक्त तथ्य है। एक विद्वान् कृत इस परिभाषा को यदि काव्य-क्षेत्र में प्रयुक्त करें तो बहुत कम कवि सच्चे कलाकारों की कोटि में आ सकेंगे। परंतु कबीर का आसन उस ऊँचे स्थान पर अविचल दिखाई देता है। यदि सत्य के खोजी कबीर के काव्य में तथ्य को स्वतंत्रता न मिली हो, तो और कहीं नहीं मिल सकती। कबीर के महत्त्व का अनुमान इसी से हो सकता है।

कबीरदास छंदशास्त्र से अनभिज्ञ थे, यहाँ तक कि वे दोहों को भी पिंगल की खराद पर न चढ़ा सके। डफली बजाकर गाने में जो शब्द जिस रूप में निकल गया, वही ठीक था। मात्राओं के घट बढ़ जाने की चिंता उनके लिये व्यर्थ थी। परंतु साथ ही कबीर में प्रतिभा थी, मौलिकता थी। उन्हें कुछ संदेश देना था और उसके लिये शब्द की मात्रा या वर्णों की संख्या गिनने की आवश्यकता न थी। उन्हें तो इस ढंग से अपनी बातें कहने की आवश्यकता थी जिसमें वे सुननेवालों

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

के हृदय में पैठ जायँ और पैठकर जम जायें। इसके अतिरिक्त वह काल भाषा के प्राथमिक विकास का था, तब तक उसमें विशेष मार्जन नहीं हो पाया था।

कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है; क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीर की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं परंतु भाषा का निर्णय प्रायः शब्दों से नहीं होता। भाषा के आधार क्रियापद, संयोजक शब्द तथा कारक-चिन्ह हैं जो वाक्य-विन्यास की विशेषताओं के कारण होते हैं। कबीर में केवल शब्द ही नहीं, क्रिया-पद, कारक-चिन्हादि भी कई भाषाओं के मिलते हैं। क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी बोली के हैं। कारक-चिन्ह में से, कै, सन, सा आदि अवधी के हैं, कौ ब्रज का है और थै राजस्थानी का। यद्यपि उन्होंने स्वयं कहा है--"मेरी बोली पूरबी," तथापि खड़ी,ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी-फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है। "पूरबी" से उनका क्या तात्पर्य है, यह नहीं कह सकते। काशीनिवास उनकी पूरबी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष में है, परंतु उनकी भाषा में बिहारी का भी पर्याप्त मेल है, यहाँ तक कि मृत्यु के समय मगहर में उन्होंने जो पद कहा है, उसमें मैथिली का भी कुछ संसर्ग दिखाई देता है। यदि बोली का अर्थ मातृभाषा लें और "पूरबी" का "बिहारी" तो कबीर के जन्म के संबंध में एक नया ही प्रकाश पड़ता है। उनका अपना अर्थ जो कुछ हो, पर

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding

पाई जाती हैं उनमें अवधी और बिहारी दोनों बोलियाँ। इस पँचमेल खिचड़ी का कारण यह है कि उन्होंने दूर दूर के साधु-संतों का सत्संग किया था जिससे स्वभावतः उन पर भिन्न भिन्न प्रांतों की बोलियों का प्रभाव पड़ा।

कबीर पढ़े लिखे नहीं थे; इसी से उन पर बाहरी प्रभाव बहुत अधिक पड़े। भाषा और व्याकरण की स्थिरता उनमें नहीं मिलती। यह भी संभव है कि उन्होंने जान बूझकर अनेक प्रांतों के शब्दों का प्रयोग किया हो, अथवा शब्दभांडार की कमी के कारण जब जिस भाषा का सुना-सुनाया शब्द उनके सामने आ गया हो तब वही उन्होंने अपनी कविता में रख दिया हो। शब्दों को उन्होंने तोड़ा मरोड़ा भी बहुत है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में अक्खड़पन है और साहित्यिक कोमलता का सर्वथा अभाव है। कहीं कहीं उनकी भाषा बिलकुल गँवारू लगती है, पर उनकी बातों में खरेपन की मिठास है, जो उन्हीं की विशेषता है और उसके सामने यह गँवारपन खटकता नहीं।

कबीर ही हिंदी के सर्वप्रथम रहस्यवादी कवि हुए। सभी संत कवियों में थोड़ा बहुत रहस्यवाद मिलता है, पर उनका काव्य विशेषकर कबीर का ही ऋणी है।

कबीर पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियों की नकल नहीं था और न वह सुनी सुनाई बातों का बेमेल भांडार ही था। पढ़े लिखे तो वे थे नहीं, परंतु सत्संग से भी जो बातें उन्हें मालूम हुईं, उन्हें वे अपनी विचार-धारा के द्वारा मानसिक

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

पाचन से सर्वथा अपनी ही बना लेने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने स्वयं कहा है 'सो ज्ञानी आप विचारै'।

निर्गुण संत कवियों में प्रचार की दृष्टि से, प्रतिभा की दृष्टि से तथा कवित्व की दृष्टि से भी कबीर का स्थान सर्वोपरि है। उनके पीछे के प्रायः सब संतों ने अधिकतर उनका ही अनुगमन किया है।

नानकदेव

प्रसिद्ध सिख संप्रदाय के संस्थापक तथा प्रथम गुरु नानक जी जाति के खत्री थे। इनके पिता कालूचंद खत्री लाहौर के निवासी थे। इन्होंने प्रारंभ में वैवाहिक जीवन व्यतीत किया था और इन्हें श्रीचंद और लक्ष्मीचंद नाम के दो पुत्र भी हुए थे। गुरु नानक ने घर-बार छोड़कर जब संन्यास ग्रहण किया, तब कहा जाता है कि उनकी भेंट महात्मा कबीर से हुई थी। कबीर के उपदेशों का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा था। उनके ग्रंथ साहब में कबीर की वाणी भी संगृहीत है। नानक जी पंजाब के निवासी थे और पंजाब मुसलमानों का प्रधान केंद्र था। इसलाम और हिंदू धर्म के संघर्ष के कारण पंजाब में जो अशांति फैलने की आशंका थी, उसे नानकजी ने दूर करने का सफल प्रयास किया। उनकी वाणी में हिंदुओं और मुसलमानों के विचारों का मेल प्रशंसनीय रीति से हुआ।

कबीर की ही भाँति नानक भी अधिक पढ़े लिखे नहीं थे, पर साधुओं के संसर्ग तथा पर्यटन के अनुभव से नानक के उपदेशों

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

में एक प्रकार की विशेष प्रतिभा तथा प्रभावोत्पादकता पाई जाती है। वास्तव में इन संत कवियों की वाणी उनकी आत्मा की वाणी है; अतः उसका प्रभाव सीधा हृदय पर पड़ता है। यह ठीक है कि काव्य की कृत्रिम दृष्टि से नानक की कविता साधारण कोटि की ही समझी जायगी, परंतु कला में जो स्वाभाविकता तथा तीव्रता अपेक्षित होती है, नानक में उसकी कमी नहीं है। महात्मा नानक की भाषा से पंजाबीपन स्पष्ट देख पड़ता है, जो उनके पंजाब-निवासी होने के कारण है। परंतु साथ ही अन्य प्रांतीय प्रयोग भी कम नहीं हैं, जो उनके पर्यटन के परिचायक हैं। नानक के पद प्रसिद्ध सिख ग्रंथ "ग्रंथ साहब" में एकत्र किए गए है। यह ग्रंथ सिखों का धर्मग्रंथ है और अत्यंत पूज्य दृष्टि से देखा जाता है।

दादूदयाल

दादूदयाल का जन्म सवत् ६०१ में गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान में बतलाया जाता है। इनकी जाति का ठीक ठीक पता नहीं चलता। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण बतलाते हैं और कुछ इन्हें मोची या धुनिया मानते हैं। संभवतः ये नीचो जाति के ही थे। ये स्पष्टतः कबीर के शिष्य तो नहीं थे, पर इन्होंने अपने सभी सिद्धांतों को कबीर से ही ग्रहण किया है। दादू का एक अलग संप्रदाय चला था और अब भी अनेक दादूपथी पाए जाते हैं। इनकी मृत्यु जयपुर प्रांत के अंतर्गत भराने की पहाड़ी नामक स्थान में हुई थी और यही स्थान अब तक दादूपंथियों का मुख्य केंद्र बना हुआ है।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

दादू का प्रचारक्षेत्र अधिकतर राजपूताना तथा उसके आस-पास का प्रांत था, अतः उनके उपदेशों की भाषा में राजस्थानी का पुट पाया जाता है। संत कवियों की भाँति दादू ने भी साखियाँ तथा पद आदि कहे हैं जिनमें सतगुरु की महिमा, ईश्वर की व्यापकता, जाति-पाँति की अवहेलना आदि के उपदेश दिए गए हैं। इनकी वाणी में कबीर की वाणी से सरसता तथा तत्त्व अधिक है, यद्यपि ये कबीर के समान प्रतिभाशाली नहीं थे। कबीर तर्कप्रिय थे; अतः उन्हें तार्किक की सी कठोरता भी धारण करनी पड़ी थी, परंतु दादू ने हृदय की सच्ची अनुभूतियों का ही अभिव्यंजन किया है। इनकी मृत्यु सवत् १६६० में हुई थी। आरंभकाल के संत कवियों में ये पढ़े-लिखे जान पड़ते हैं।

मलूकदास

मलूकदास औरंगजेब के समकालीन निर्गुण भक्त-कवि थे। "अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम" वाला प्रसिद्ध दोहा इन्हीं की रचना है। इनकी भाषा साधारण संत कवियों की अपेक्षा अधिक शुद्ध और संस्कृत होती थी और इनको छंदों का भी ज्ञान था। रसखान तथा ज्ञानबोध नाम की इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं जिनमें वैराग्य तथा प्रेम आदि की मनोहर वाणी व्यक्त की गई है। एक सौ आठ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु सं० १७३९ में हुई थी। ये कड़ा जिला इलाहाबाद के निवासी थे।

इन संत कवियों में सबसे अधिक विद्वान् तथा पंडित कवि सुंदरदास हुए। सुंदरदास दादूदयाल की शिष्य-परंपरा में थे।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

इनका अध्ययन विशेष विस्तृत था। इन्होंने काशी में आकर शिक्षा प्राप्त की थी। सुंदरदास की भाषा शुद्ध काव्य-भाषा है और उनकी वाणी में उनके उपनिषदों आदि से परिचित होने का पता चलता है, परंतु कबीर आदि की भाँति उनमें स्वभावसिद्ध मौलिकता तथा प्रतिभा अधिक नहीं थी, इससे उनका प्रभाव भी विशेष नहीं पड़ा। सुंदरदास के अतिरिक्त संतों में अक्षर-अनन्य, धर्मदास, जगजीवन आदि का नाम भी लिया जाता है; साथ ही तुलसी साहब, गोविंद साहब, भीखा साहब, पलटू साहब आदि अनेक संत हुए जिनमें से अधिकांश का साहित्य पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। परंतु संतों की परंपरा का अंत नहीं हो गया और न्यूनाधिक रूप में वह बराबर चलती रही, और अब तक चली जा रही है।

सुंदरदास

यद्यपि साहित्यिक समीक्षा में निर्गुण संत कवियों को उच्चतम स्थान नहीं दिया जाता, पर इससे हम उनके किए हुए उपकार को नहीं भूल सकते। मुसलमान और हिंदू संस्कृतियों के उस संघर्ष-काल में जिस शांतिमयी वाणी की आवश्यकता थी, संतों ने उसी की अभिव्यंजना की। यह ठीक है कि हिंदू समाज के उच्च वर्ण इस निर्गुण संप्रदाय की ओर अधिक आकृष्ट नहीं हुए, प्रत्युत उसके विरोध में ही बने रहे, पर समाज की निम्न श्रेणी का जो भारी कल्याण इन कवियों ने किया, वह इस देश के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। अब भी हिंदी के प्रधान कवियों

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

में कबीर आदि का उच्च स्थान है और प्रचार की दृष्टि से तो महात्मा तुलसीदास के बाद इन्हीं का नाम लिया जा सकता है। एक बात और ध्यान देने की है। अब तक समस्त धार्मिक आंदोलन केवल संस्कृत भाषा का ही आश्रय लेकर होता था, यहाँ तक कि वल्लभाचार्य और रामानंद ने भी जो कुछ लिखा, संस्कृत में ही लिखा था। इनके अनंतर यह प्रवृत्ति बदली और देश-भाषाओं का अधिकाधिक उपयोग होने लगा। इसी का यह परिणाम हुआ कि साधारण जनता इस ओर आकृष्ट हुई और उसमें जागर्ति उत्पन्न हुई। संत महात्माओं के उद्योग का यह फल हुआ कि दलित और अस्पृश्य जातियों में भी जीवन के आदर्श को ऊँचा करने और उच्च जातियों के समकक्ष होने की कामना हुई। जिस प्रकार आजकल एक अस्पृश्य जाति का पुरुष मुसलमान या क्रिस्तान होने पर समाज में सम्मान का भाजन होता है उसी प्रकार मध्य युग में नीच से नीच जाति का व्यक्ति भी संत होकर और भगवद्भक्ति में लीन होकर समाज में आदर-सत्कार का अधिकारी हो जाता था। पर यह संस्कार सामूहिक रूप में न हो सका। इसका मुख्य कारण अंत्यजों की व्यावसायिक परिस्थिति ही जान पड़ती है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि इस युग में इन सन्त महात्माओं के कारण साहित्य और भारतीय समाज का महान् उपकार हुआ।

——

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पाँचवाँ अध्याय

प्रेममार्गी भक्ति शाखा

आविर्भाव काल

जब एक जाति किसी देश से आकर अन्य देश की किसी दूसरी जाति से मिलती है तब दोनों के भावों, विचारों तथा रीति-नीति का विनिमय ऐसी विलक्षण रीति से होने लगता है कि उन जातियों की सभ्यता तथा संस्कृति में बड़े बड़े परिवर्तन हो जाते हैं। कभी कभी तो विजयिनी जाति शक्तिमती होती हुई भी अपनी अल्प संख्या अथवा हीन संस्कृति के कारण विजित जाति की बहु संख्या में विलीन हो जाती है और अपना संपूर्ण अस्तित्व खोकर विजित जाति की सभ्यता आदि ग्रहण कर लेती है। भारत पर आक्रमण करनेवाली हूण, कुशन और यूची आदि जातियों की ऐसी ही अवस्था हुई थी। कभी कभी विजेताओं के उत्साह अथवा उच्चाकांक्षाओं में विजितों के अस्तित्व को दबा देने की भी क्षमता देखी जाती है। प्राचीन यूनान पर डोरियन तथा आइओनियन आक्रमणों का यही प्रभाव पड़ा था। इसी प्रकार कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि यद्यपि दोनों जातियों के संघर्ष से दोनों की रीति-नीति में अंतर पड़ते हैं, पर दोनों ही अपनी सभ्यता तथा अन्य विशेषताओं को अक्षुण्ण रखती हैं, और

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

अलग अलग अपना विकास करती हैं। ऐसा अधिकतर उस समय होता है जब दोनों ही जातियाँ अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को उन्नत कर चुकी हों और परिस्थिति के अनुसार उनमें साधारण परिवर्तन करके अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने की उनमें क्षमता रखती हों। भारतवर्ष पर मुसलमानों की विजय के अनंतर जब हिंदू और मुसलमान सभ्यताओं का संयोग हुआ तब हिंदू अपनी प्राचीन तथा उच्च सभ्यता के कारण दृढ़ बने रहे और मुसलमानों के नवीन धार्मिक उत्साह तथा विजयवर्ग ने उन्हें हिंदुओं में मिल जाने से रोक रखा।

हिंदू और मुसलमान यद्यपि अलग अलग बने रहे, परंतु उनमें भावों और विचारों की एकता अवश्य स्थापित हुई। दोनों ही जातियों ने अपने धार्मिक आदि विभेदों को वहीं तक बना रहने दिया जहाँ तक उनके स्वतंत्र अस्तित्व के लिये उनकी आवश्यकता थी। इसके आगे दोनों धीरे धीरे मिलने लगे। वास्तव में मनुष्य सामाजिक जीव है। उसके हृदय में शांति के प्रति अनुराग होता है। उसे विरोध उतना अच्छा नहीं लगता। जहाँ तक हो सकता है, मनुष्य विपत्तियों से भी प्रेम-पूर्वक व्यवहार करता है। यही मनुष्य की मनुष्यता है। इसी मनुष्यता का परिचय कबीर आदि महात्माओं ने मुसलमानी शासन के आदिकाल में दिया था। जब हिंदू और मुसलमान दोनों साथ ही बस गए और साथ ही रहने लगे, तब विरोध के आधार पर सामाजिक प्रगति नहीं हो सकती थी। दोनों को

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मिलकर रहने की उत्सुकता हुई। यद्यपि विजयी मुसलमान शासक अपने विजयोन्माद में धार्मिक नृशंसता के पक्के उदाहरण वन रहे थे, पर साधारण जनता उनकी सी कठोर मनोवृत्ति धारण न कर मेल की ओर बढ़ रही थी। कवीर ने मेल की बड़ी प्रबल प्रेरणा की थी। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि हमको उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर एक है, केवल नामभेद से अज्ञानवश हम उसे भिन्न भिन्न समझा करते हैं। धार्मिक विवाद व्यर्थ है, सब मार्ग एक ही स्थान को जाते हैं। इस प्रकार कवीर ने परोक्ष सत्ता की एकता स्थापित की। थोड़े समय पीछे कवियों का एक समुदाय ऐसा भी उदय हुआ जिसने व्यावहारिक जीवन की एकता की ओर अधिक ध्यान दिया।

यह समुदाय सूफी कवियों का था जो प्रेमपंथ को लेकर चला था। सूफियों का प्रेम लौकिक नहीं था, परोक्ष के प्रति था। यद्यपि इसलाम धर्म के अनुसार सूफियों के परोक्ष को भी निराकार ही रहना पड़ा, परंतु अपने उत्कट प्रेम तथा उदार हृदय के कारण सूफी संप्रदाय में अव्यक्त परोक्ष सत्ता को वहुत कुछ व्यक्त स्वरूप भी मिला। सूफी उस परमेश्वर की उपासना करते थे जो निर्गुण और निराकार तो है परंतु अनंत प्रेम का भांडार भी है। साथ ही धार्मिक प्रतिवंध के कारण सूफी कवि अपने उपास्य देव के प्रेम के संवंध में स्पष्टतः कुछ भी नहीं कह सकते थे, अतः उन्होंने प्रेम-संवंधी अनेक आख्यानों का सृजन

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

किया और उन लौकिक आख्यानों की सहायता से ईश्वर के प्रेम की अभिव्यंजना की। यह अभिव्यंजना संकेत के ही रूप में की गई, और इसी से हिंदी में रहस्यात्मक कविता की सृष्टि हुई। सूफी कवियों के आख्यान अधिकतर कल्पित होते थे पर कभी कभी उनमें ऐतिहासिक घटनाओं का भी समावेश होता था। वास्तव में वे अव्यक्त के प्रति प्रेमाभिव्यंजन के उपयुक्त कथानक का इच्छानुसार सृजन करते थे, और ऐतिहासिक तथ्यों का वहीं तक समावेश करते थे जहाँ तक उनसे अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति में सहायता मिलती थी अथवा बाधा नहीं पड़ती थी। यहाँ यह कह देना भी उचित होगा कि सूफी कवियों के अधिकांश आख्यान हिंदू समाज से लिए गए हैं और हिंदू जीवन से पूरी सहानुभूति रखते हैं। यह उन कवियों के उदार हृदय और सामंजस्य बुद्धि का परिचायक है।

कबीर आदि संतों की बानी अटपटी है। उसमें ब्रह्म की निराकार उपासना का उपदेश दिया गया है और वेदों पुराणों आदि की निंदा करके एक प्रकार के दंभरहित सरल सदाचारपूर्ण धर्म की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है। राम और रहीम को एक ठहराकर हिंदू तथा मुसलमान मतों का अद्भुत मेल मिलाया गया है। इसी प्रकार हिंसा और मांसभक्षण का खंडन कर नमाज और पूजा का विरोध करके इन संतों ने किस मार्ग का अनुसरण किया किसका नहीं, यह साधारण जनता की समझ में नहीं आ सकता था। फिर भी कबीर आदि का देश के साधारण

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

जनसमुदाय पर जो महान् प्रभाव पड़ा, वह कहने सुनने की बात नहीं है। वे सन्त पढ़े लिखे न थे, उनकी भाषा में साहित्यिकता न थी, उनके छंद ऊटपटाँग थे तथापि उन्हें जनता ने स्वीकार किया और उनकी विशेष प्रसिद्धि हुई। इसके विपरीत सूफी कवियों के उद्‌गार अधिकतर शृंखलित और शास्त्रानुमोदित थे, उनकी भाषा भी अच्छी मँजी हुई थी और छंद आदि का भी उन्हें ज्ञान था। इन कवियों की संख्या भी कम न थी फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि देश में सूफी कवियों की न तो अधिक प्रसिद्धि ही हुई और न उनका अधिक प्रचार ही हुआ। इनमें से अनेक कवि तो नामावशेष ही थे और कठिनाई से उनके ग्रंथों का पता लगा है। संभवतः साहित्यिक समाज में भी इन कवियों का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान कभी नहीं माना गया। इनकी कविताओं के उद्धरण न तो लक्षण ग्रंथों में मिलते हैं और न धार्मिक संग्रहों में ही उन्हें स्थान दिया गया है। संभवतः सूफियों की रहस्योन्मुख भावनाएँ इस देश की जलवायु के उतनी भी अनुकूल नहीं थीं जितनी कबीर आदि की अटपटी और अव्यवस्थित वाणी थी।

सूफियों की परंपरा

प्रेमाख्यानक सूफी कवियों की परंपरा हिंदी में कुतबन के समय से चली। कुतबन शेरशाह के पिता हुसैनशाह के आश्रित थे और चिस्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे। इनके प्रेमकाव्य का नाम मृगावती है जो इन्होंने सन् ९०९ हिजरी में लिखा था। मृगा-

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

वती के उपरांत दूसरी प्रेमगाथा मधुमालती लिखी गई जिसकी एक खंडित प्रति खोज में मिली है। इसके रचयिता मंझन बड़े ही सरस-हृदय कवि थे। इन्होंने प्रकृति के दृष्यों का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है और उन दृश्यों के द्वारा अव्यक्त की ओर बड़े ही मधुर संकेत किए हैं। प्रेमगाथाकारों में सबसे प्रसिद्ध कवि जायसी हुए जिनका पद्मावत काव्य हिंदी का एक जगमगाता रत्न है। इस काव्य में कवि ने ऐतिहासिक तथा काल्पनिक कथानकों के संयोग से बड़ी ही रोचकता ला दी है। इसमें मानव हृदय के उन सामान्य भावों के चित्रण में बड़ी ही उदारता तथा सहानुभूति का परिचय दिया गया है जिनका देश और जाति की संकीर्णताओं से कुछ भी संबंध नहीं। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करते हुए कवि की तन्मयता इतनी बढ़ जाती है कि वह अखिल दृश्य जगत् को एक निरंजन ज्योति से आभासित पाता और आनंदातिरेक के कारण उसके साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। जायसी के उपरांत उसमान, शेख नबी, नूरमुहम्मद आदि अनेक प्रेमगाथाकार हुए पर पद्मावत का सा विशद काव्य फिर नहीं लिखा गया। सगुणोपासक तुलसी, सूर आदि भक्त कवियों के आविर्भाव से प्रेमगाथाकारों की शक्ति बहुत कुछ क्षीण पड़ गई थी।

उपर्युक्त प्रेमगाथाओं में बहुत सी बातें मिलती जुलती हैं। एक तो इनकी रचना भारतीय चरितकाव्यों की सर्गबद्ध शैली में न होकर फ़ारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है। जिस प्रकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

फारसी की मसनवियों में ईश्वरवंदना, मुहम्मद साहब की स्तुति, तत्कालीन राजा की प्रशंसा आदि कथारंभ के पहले होते थे, उसी प्रकार इनमें भी हैं। प्रेमगाथाओं की भाषा भी प्रायः एक सी है। यह भाषा अवध प्रांत की है। इन प्रेम की पीर के कवियों का प्रधान केंद्र अवध की भूमि ही थी। छंदों के प्रयोग में भी इस समुदाय के कवियों में समानता पाई जाती है। सबने प्रायः दोहों और चौपाइयों में ही ग्रंथ रचना की है। ये छंद अवधी भाषा के इतने उपयुक्त हैं कि महाकवि तुलसीदास ने भी अपने प्रसिद्ध रामचरित्रमानस में इन्हीं छंदों का प्रयोग किया है। चौपाई छंद तो मानों अवधी भाषा के लिये ही बनाया गया हो, क्योंकि व्रजभाषा के कवियों ने इस छंद का सफलतापूर्वक उपयोग कभी किया ही नहीं। समता की अंतिम बात यह है कि प्रेम-गाथाकार सभी कवि मुसलमान थे। एक तो यह संप्रदाय ही मुसलमानों के सूफी मत को लेकर खड़ा हुआ था, दूसरे हिंदू कवियों में उसी समय के लगभग सगुणोपासना चल पड़ी और वे व्यक्त के भीतर अव्यक्त का रहस्यमय साक्षात्कार करने की अपेक्षा व्यक्ति को ही सब कुछ मानने और अवताररूप में राम और कृष्ण की जीवनगाथा अंकित करने में प्रवृत्त हुए। मुसलमान प्रारंभ से ही मूर्तिद्वेषी थे अतः उन्हें सूफियों की शैली के प्रचार का विशेष सुभीता था।

प्रेममार्गी सूफी कवियों ने प्रेम का चित्रण जिस रूप में किया है, उसमें विदेशीयता ही नहीं है, प्रत्युत भारतीय शैलियों का भी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

सूफियों की भारतीयता

प्रभाव है। एक तो इस देश की रीति के अनुसार नायक उतना प्रेमोन्मुख नहीं होता जितनी नायिका होती है, परंतु जायसी आदि ने फारस की शैली का अनुसरण करते हुए नायक को अधिक प्रेमी तथा प्रेमपात्र की प्राप्ति के लिये प्रयत्न शील दिखाया है। वास्तव में इन कवियों का प्रेम ईश्वरोन्मुख था। सूफी अपने प्रियतम ईश्वर की कल्पना स्त्री के रूप में करते थे। इसलिए जायसी आदि को भी नायक के प्रेम को प्रधानता देनी पड़ी। परंतु भारतीय शैली के अनुसार असंख्य गोपिकाएँ कृष्ण के प्रेम में लीन, उनके विरह में व्याकुल और उनकी प्राप्ति में प्रयत्नशील रहती हैं। वास्तव में यह प्रेम भी अपने शुद्ध रूप में ईश्वरोन्मुख है; क्योंकि भारतीय दृष्टि में कृष्ण भगवान् पूरी कलाओं के अवतार, जगदुद्धारक, योगीश्वर आदि माने जाते हैं—उनके प्रति गोपिकाओं का प्रेम, पुरुष के प्रति प्रकृति का प्रेम समझा जाता है। सूफी कवियों पर इस भारतीय शैली का प्रभाव पड़ा था और उन्होंने प्रारंभ में नायक को प्रियतमा की प्राप्ति के लिये अत्यधिक प्रयत्नशील दिखाकर ही संतोष नहीं कर लिया, वरन् उपसंहार में नायिका (प्रियतमा) के प्रेमोत्कर्ष को भी दिखाया। दूसरी बात यह भी है कि इस देश में प्रेम की कल्पना अधिकतर लोकव्यवहार के भीतर ही की जाती है और कर्तव्यबुद्धि से उच्छृंखल प्रेम का नियंत्रण किया जाता है। राम और सीता का प्रेम ऐसा ही है। कृष्ण और गोपिकाओं के प्रेम में ऐकांतिकता आ गई है, परंतु सूफियों के

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding

प्रेम की तरह वह भी बिलकुल लोकबाह्य नहीं है। भारतीय सूफी कवियों ने इस देश की प्रेमपरपरा का तिरस्कार नहीं किया, उनका प्रेम बहुत कुछ लोकव्यवहार के परे है, पर फिर भी असंयत नहीं। जायसी ने तो पद्मावत में नायिका के सतीत्व तथा उत्कट पतिप्रेम आदि का दृश्य दिखाकर अपने भारतीय होने का पूरा परिचय दिया है। इन दो मुख्य बातों के अतिरिक्त प्रेमवर्णनों में अश्लील दृश्यों को भरसक बचाकर, प्रकृति के सुरम्य रूपों को चित्रित कर यहाँ के प्रेममार्गी कवियों ने अपने काव्यों को भारतीय जल-वायु के बहुत कुछ अनुकूल कर दिया है।

सूफी सिद्धांत के अनुसार अंत में आत्मा परमात्मा में मिल जाता है। इसी लिये उनकी कथाओं का अंत या समाप्ति दुःखांत हुई है। आरंभ में तो यह बात बनी रही, पर आगे चलकर इस संप्रदाय के कवि यह बात भूल गए; अथवा भारतीय पद्धति का, जो आदर्शवादी थी और जिसके अनुसार दुःखांत नाटक तक नहीं बने, उन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने नायक और नायिका को भोग-विलास और सुख-चैन में रखकर ही अपने ग्रंथ की समाप्ति की है।

प्रस्तुत में अप्रस्तुत

सूफी कवियों का प्रेम ईश्वरोन्मुख था। उन्होंने अपने प्रेम प्रबंधों में यद्यपि लौकिक कथा ही कही है परंतु वह लौकिक कथा उनकी हृदयानुभूति के व्यक्त करने का साधन मात्र है। उस कथा से उनका संबंध बहुत घनिष्ट नहीं है, वहीं तक है जहाँ तक वह उनके

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

ईश्वरोन्मुख प्रेम के अभिव्यंजन में समर्थ होती है। सूफियों का प्रेम ईश्वर के प्रति होता है, परंतु ईश्वर तो निराकार है, निर्गुण है, अतः अवर्णनीय है। हाँ, उसका आभास देने के लिये लौकिक कथाओं की सहायता लेनी पड़ी है। पद्मावत की ही कथा को ले लीजिए। उसमें यद्यपि चित्तौड़ के अधिपति रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकन्या पद्मावती की कथा कही गई है, परंतु जायसी ने एक स्थान पर स्पष्ट कह दिया है कि उनकी यह कथा तो रूपक मात्र है, वास्तव में वे इस ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति कर रहे हैं जो प्रत्येक साधक के हृदय में उत्पन्न होती है और उसे ईश्वर प्राप्ति की ओर प्रवृत्त करती है। यही नहीं, जायसी ने तो अपने रूपक को और भी खोल दिया है और अपनी कथा के विविध प्रसंगों तथा पात्रों को ईश्वर-प्रेम के विविध अवयवों का व्यंजक बतलाया है। इस प्रकार उनकी पूरी कथा एक महान् अन्योक्ति ठहरती है। सभी प्रत्यक्ष वर्णन अप्रत्यक्ष की ओर संकेत करते हैं, कवि की दृष्टि से स्वतः उनका विशेष महत्त्व नहीं। यह ठीक है कि कवि की दृष्टि ही समीक्षक की भी दृष्टि नहीं होती, अतः साहित्य-समीक्षक सारे वर्णनों को अप्रस्तुत न मानकर बीच बीच में अप्रस्तुत की ओर संकेत मात्र मानते हैं, परंतु संत सूफियों का ठीक आशय समझने में हम भूल नहीं कर सकते। रत्नसेन और पद्मावती के लौकिक रूप से उनका उतना संबंध नहीं था जितना अपने पारमार्थिक प्रेम से था। कथा-प्रसंगों में, बीच बीच में, प्रेमी के कष्ट और त्याग

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding

आदि के वर्णन मिलते हैं, और अव्यक्त से विशाल प्रकृति के विरह तथा मिलन का ऐसा मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है कि हमारी दृष्टि लौकिक सीमा से ऊँचे उठकर उस ओर जाती देख पड़ती है जिस ओर ले जाना प्रेममार्गी संत कवियों का लक्ष्य था।

सूफियों की रहस्यप्रियता के संबंध में हम पहले भी कह चुके हैं। यहाँ हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वास्तविक रहस्यवाद की कविता हिंदी में इसी कवि-संप्रदाय की मिलती है। मनुष्य की साधारण अनुभूतियों से ऊपर उठने पर साधक की भावना जब अज्ञात तत्त्वों को प्रत्यक्ष करने लगती है; तब अनेक रूपों में रहस्यवाद की सृष्टि होती है। कबीर आदि संतों का रहस्यवाद आत्यंतिक निर्गुण सत्ता का निर्देश करता है, अतः वह काव्य में उतना विस्तार न प्राप्त कर सका जितना जायसी आदि सूफियों का। कबीर का रहस्यवाद दार्शनिक रहस्यवाद कहा जा सकता है और जायसी का रहस्यवाद माधुर्य भावना का रहस्यवाद कहा जा सकता है। साधकों के पक्ष में न तो यह रहस्यवाद है और न रहस्य भावना में ही उसका अंतर है। वे तो इस अनित्य जगत् की साक्षी-स्वरूप नित्य और परोक्ष सत्ता का साक्षात्कार करते हैं और तन्मयता की अवस्था में जो कुछ उनके उद्‌गार होते हैं वही, रहस्यवाद की कविता बन जाते हैं। कबीर के लिये वह रहस्य नहीं है; क्योंकि वे उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, रहस्य तो वह साधारण पाठकों के लिये है। जायसी ने अपनी

रहस्यवाद

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

रहस्यात्मकता को दृश्य जगत् के नाना रूपों का अव्यक्त के साथ संबंध चरितार्थ करते हुए दिखाया है। कभी जब यह दृश्य जगत् अव्यक्त से वियुक्त होता है तब वियोग के कितने ही व्यापक और रमणीय दृश्य दिखाई पड़ते हैं, कभी जब इसका उसके साथ संयोग होता है, तब सारी प्राकृति मानों आनंदोल्लास से नाच उठती है। इस प्रकार प्राकृति की ही सहायता से जायसी का रहस्यवाद व्यक्त हुआ है। इसके विपरीत कबीर ने वेदांत के अनेक वादों तथा अन्य दार्शनिक शैलियों का अनुसरण करते हुए रहस्योद्गार व्यक्त किए हैं। कविता की दृष्टि से कबीर का रहस्यवाद ओज और प्रकाशपूर्ण है और सूफियों का माधुर्य और रसपूर्ण हैं। कबीर एकमात्र निर्गुणोपासक हैं और सूफी अव्यक्त के प्रेममूलक उपासक हैं। वे प्रेम से अव्यक्त को व्यक्त रूप में प्रकट करते हैं।

कुतबन

ये विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के मध्य भाग में शेरशाह के पिता हुसेनशाह के आश्रय में रहते थे। चिश्ती वंश के प्रसिद्ध शेख बुरहान इनके गुरु थे। हिंदी के सूफी कवियों में ये ही सबसे पहले हुए और इनकी रचित "मृगावती" का नामोल्लेख जायसी ने अपने पद्मावत में किया है। मृगावती पुस्तक में गणपतिदेव के पुत्र और मृगावती की प्रेमगाथा अंकित की गई है। गणपतिदेव चंद्रनगर के राजा हैं और मृगावती कंचनपुर की राज्यकन्या है। चंद्रनगर का राजकुमार कंचनपुर की राजकुमारी को देखकर

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मोहित हो गया पर राजकुमारी उड़ने की विद्या जानती थी, इससे वह राजकुमार को मिल न सकी। अनेक कष्ट उठाने पर अंत में मृगावती से उसकी भेंट हुई। इसी बीच में उसने रुकमिनी नामक एक सुंदरी को राक्षस के हाथ से बचाकर अपनी प्रेमिका बना लिया था। मृगावती और रुकमिनी दोनों उसकी रानियाँ हुई। एक दिन वह हाथी से गिरकर मर गया। मरने पर दोनों रानियों के सती होने का मर्मस्पर्शी चित्र दिखाया गया है। कुतबन की यह गाथा काल्पनिक है। इसके बीच बीच में प्रेम-मार्ग की कठिनाई का भीषण चित्र है और अनेक रहस्यात्मक स्थल हैं।

मंझन

मंझन की मधुमालती नामक प्रेमगाथा का उल्लेख भी पद्मावत में किया गया है। मधुमालती की कथा मृगावती की अपेक्षा अधिक रोचक है और इसके वर्णन भी अधिक विशद हैं। प्रकृति के अनेक सुंदर दृश्यों का इसमें वर्णन मिलता है।

मलिक मुहम्मद जायसी

प्रेममार्गी सूफियों में मलिक मुहम्मद जायसी ही सर्व-प्रधान हुए। उनका रचनाकाल शेरशाह के राजत्वकाल के सोलहवीं शताब्दी का अंतिम भाग था। पद्मावत और अखरावट इनके रचे दो ग्रंथ मिले हैं जिनमें पद्मावत प्रधान है। हाल में उनकी 'आखिरी कलाम' नाम की रचना खोज में मिली है। पद्मा-वत की कथा में ऐतिहासिकता और काल्पनिकता का अच्छा

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus. Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

समन्वय हुआ है। अखरावट में अक्षर-क्रम से सूफी सिद्धांतों और ईश्वर तथा जगत् विषयक व्यवहारों का निरूपण है। 'आखिरी कलाम' में जायसी ने मुसलमानी मजहब की मान्यताओं का निर्देश किया है और इसमें मजहबी कट्टरता का भी पुट है।

मलिक मुहम्मद अवध प्रांत के जायस कसबे के रहनेवाले थे। इनके गुरु प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहदी थे। अनेक पंडितों और साधुओं का इन्होंने सत्संग किया और बड़ी जानकारी प्राप्त की। वेद, पुराण, कुरान आदि प्रसिद्ध धर्मग्रंथों की अनेक बातें इन्हें साधु-संगति से ही मालूम हुई थीं क्योंकि ये बहु-पठित न थे। इनका भ्रमण भी बड़ा विस्तृत रहा होगा; क्योंकि पद्मावत में देश भर के भिन्न भिन्न स्थलों की भौगोलिक स्थिति का जो उल्लेख है, वह बहुत कुछ ठीक है।

पद्मावत में प्रेम-मार्ग की जो मर्मस्पर्शिणी कथा है वह स्वर्गीय प्रेम की अत्यंत व्यापक भावना से समन्वित है। क्या कथा के निर्वाह का ढंग, क्या प्रसंगानुकूल भावों की व्यंजना और क्या वर्णनों की उपयुक्तता, सभी प्रशंसनीय हैं। प्रकृति के नाना दृश्यों के द्वारा अज्ञात के प्रति जो संकेत हैं, वे जायसी की उच्च अनुभूति के परिचायक है।

अखरावट में जायसी के प्रेम संबंधी तथा अन्य सिद्धांतों का संग्रह है। इन प्रसिद्ध कवि की मृत्यु-तिथि का ठीक ठीक पता नहीं लगता।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मलिक मुहम्मद ने अपने पूर्व के जिन उपाख्यानों के नाम दिए हैं उनके अनुसार इनके निर्माण का क्रम यह होता है—सपनावती, मुगधावती, मृगावती, मधुमालती, प्रेमावती। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि मृगावती के पहले सपनावती और मुगधावती नाम के दो काव्य रचे गए थे और मधुमालती के अनंतर प्रेमावती की रचना हुई होगी। इसके अनंतर पद्मावती की रचना हुई। इनमें से केवल मृगावती और मधुमालती का पता चला है पर खेद का विषय है कि मृगावती की प्रति अब प्राप्य नहीं है और मधुमालती खंडित मिली है।

जायसी के कुछ काल उपरांत जब तुलसीदास का आविर्भाव हुआ तब सूफियों की कविता क्षीण हो चली। हिंदुओं की सगुण भक्ति के प्रवाह में सूफियों की निर्गुण भक्ति स्थिर न रह सकी। उसमान जहाँगीर के समकालीन कवि थे। ये शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्यपरंपरा में थे, हाजी बाबा इनके गुरु थे। संवत् १६७० में इनका चित्रावली नामक काव्य लिखा गया। सभी प्रेम गाथाओं की भाँति इसमें भी पैगंबर, गुरु आदि की वंदना है और बादशाह जहाँगीर को भी स्मरण किया गया है।

उसमान

चित्रावली में जायसी के पद्मावत का अत्यधिक अनुकरण किया गया है, अंतर इतना ही है कि उसकी कहानी बिलकुल काल्पनिक है और जायसी की कहानी का कुछ ऐतिहासिक

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

आधार है। कवि ने चित्रावली में अगरेजों के देश का भी एक स्थान पर नाम लिया है जिससे पता चलता है कि उस समय अँगरेज यहाँ आ गए थे और उसमान को इसका पता था।

जायसी की ही भाँति इन्होंने भी ग्रंथ में नगर, यात्रा, षड्ऋतु आदि का वर्णन किया है और ईश्वर की प्राप्ति की साधना की ओर संकेत किया है। फिर भी पद्मावत की सी विशद वर्णना इसमें कम ही मिलती है, उसके अनुकरण की छाप इसमें देख पड़ती है।

उसमान के उपरांत शेख नबी हुए परंतु इनके उपरांत प्रेम-मार्गी कवि-संप्रदाय प्रायः निर्जीव सा हो गया। यद्यपि कासिम-शाह, नूरमुहम्मद, फाजिलशाह आदि कवि होते रहे, पर उनकी रचनाओं में इस संप्रदाय का ह्रास साफ बोलता सा जान पड़ता है। हाँ, नूरमुहम्मद की "इंद्रावती" की प्रेमकहानी अवश्य सुंदर बन पड़ी है। यह सवत् १८०१ में लिखी गई थी।

उपसंहार

क्या भावों के विचार से और क्या भाषा के विचार से सूफी कवियों ने हिंदी को पहले से बहुत आगे बढ़ाया। वीरगाथा काल में केवल वीरोल्लासपूर्ण कविता का सृजन हुआ, वह भी परिमाण में अधिक नहीं। उस काल की भाषा तो बिलकुल अविकसित थी। अक्खड़ कवियों के हाथ में पड़कर वह और भी भोंड़ी बन गई। उसके उपरांत कबीर का समय आया। कबीर महात्मा थे और उनके द्वारा साहित्य में पूत भावनाओं का समावेश हुआ।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

किंतु कबीर की भाषा तो बहुत ही बिगड़ी हुई है। कुछ पंजाबी खड़ी बोली, कुछ व्रजभाषा और कुछ अवधी का पुट देकर जो खिचड़ी तैयार हुई वह रमते साधुओं के काम की भले ही हो, सर्वसाधारण विशेषकर परिमार्जित रुचि रखनेवालों के लिये उसमें बड़ी कमी थी। सूफी कवियों ने अपने उदार भावों को पुष्ट भाषा में व्यक्त करके दोनों ही क्षेत्रों में अपनी सफलता का परिचय दिया। कबीर आदि संतों की बानी सामूहिक रूप से देश के लिये बड़ी हितकारिणी सिद्ध हुई, परंतु सूफियों की प्रबंध-रचनाओं ने सामाजिक हित भी किया और साहित्यिक समृद्धि में भी सहायता दी। यह ठीक है कि सूर और तुलसी आदि के प्रवेश करते ही प्रेममार्गी कवि बहुत कुछ स्थानांतरित हो गए और हिंदी भी अत्यधिक समृद्ध हुई, पर इतना कहना ही पड़ेगा कि तुलसी को एक मार्जित भाषा देकर रामचरितमानस की रचना में सहायक होने में जायसी आदि सूफियों को श्रेय देना ही होगा। हिंदू सभ्यता और संस्कृति के प्रति सहानुभूति इन मुसलमान कवियों की खास विशेषता है। इनका हृदय अतिशय उदार और स्वर्गीय प्रेम की पीर से ओतप्रोत था। सबसे बड़ी वस्तु इनका कवितागत रहस्यवाद है जो हिंदी में अपनी विशेषता रखता है।

इन मुसलमान सूफी कवियों की देखादेखी हिंदू कवियों ने भी उपाख्यान-काव्यों की रचना की। किंतु इन सब काव्यों का ढंग या तो पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा पूर्णतया साहित्यिक

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

हुआ। सूफी कवियों की रचनाओं में धर्म की जो लहर अदृश्य रूप से व्याप्त हो रही है, उसका हिंदू कवियों की इन रचनाओं में अभाव है। ऐसे काव्यों में लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा, ढोलामारू री चउपदी, रसतरन काव्य, कनकमंजरी, कामरूप की कथा, चन्द्रकला, प्रेमपयोनिधि, हरिचंद पुराण आदि हैं। इनके संबंध में इतना कह देना आवश्यक है कि इन्हीं उपाख्यानों की परंपरा के परिणाम-स्वरूप उन अमर काव्यों की हिंदी में रचना हुई जिनके कारण हिंदी गौरवान्वित और सम्मानित हुआ।

——

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

छठा अध्याय

रामभक्ति शाखा

वैष्णव भक्ति की रामोपासिका शाखा का आविर्भाव महात्मा रामानंद ने विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किया था। यद्यपि रामानंद के पहले भी नामदेव तथा त्रिलोचन आदि प्रसिद्ध भक्त हो चुके थे, पर उन्होंने भक्ति-आंदोलन को नवीन स्वरूप देकर तथा उसे अत्यधिक लोकप्रिय और उदार बनाकर हिंदूधर्म के उन्नायकों में सम्माननीय स्थान पर अधिकार पाया। कबीर तुलसी और पीपा आदि उनके शिष्य अथवा शिष्य परंपरा में थे, इससे भी उनके महत्त्व का अनुमान हम अच्छी तरह कर सकते हैं।

रामानंदी संप्रदाय

महात्मा रामानंद स्वामी रामानुज के श्री-संप्रदाय के अनुयायी थे, यह बात जन श्रुतियों से भी ज्ञात होती है और दोनों की रचनाओं की समता से भी। श्रीवैष्णवों के यहाँ विष्णु के कृष्ण, राम तथा नृसिंह आदि अवतारों की उपासना करने की रीति प्रचलित थी, यद्यपि प्रधानतः उनका झुकाव कृष्णोपासना की ओर ही अधिक था। महात्मा रामानंद ने राम और सीता को, इष्टदेव मानकर उनकी पूजा की और हनुमान्, भरत आदि रामभक्तों के भी वे भक्त बने।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

इस प्रकार यद्यपि कई आराध्यदेव होते हैं, पर वे राम के संबंध से ही सम्मान्य समझे जाते हैं, अन्यथा नहीं। राम की उपासना उन्हें परब्रह्म मानकर की गई। अन्य उपासदेव उनके सामने निम्न स्थान के अधिकारी हुए। कबीर ने तो राम को निर्गुण और सगुण ब्रह्म से भी परे बतलाकर उनका चरम उत्कर्ष प्रकट किया है। पर यह समानता केवल नाम की थी, व्यक्तित्व की नहीं। राम से उनका अभिप्राय परब्रह्म से ही था।

रामानंद की शिष्य परंपरा

रामभक्ति की जो शाखा महात्मा रामानंद द्वारा विकसित हुई, आगे चलकर उसका अत्यधिक विस्तार हुआ और वह खूब फूली-फली। यद्यपि अपनी उदारता के कारण रामभक्ति उस सांप्रदायिक कट्टरपन से बची रहे जो कृष्णोपासना के कुछ संप्रदायों में फैली, तथापि इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि रामानंद की रामोपासना का इस देश पर प्रचुर प्रभाव पड़ा। कबीर, पीपा, रैदास, सेना, मलूक आदि संत सब रामानंद के ऋणी हैं, यद्यपि उनके चलाए हुए संप्रदायों पर कुछ इस्लामी प्रभाव भी पड़े और अनेक भेदोपभेद भी हुए। जनता पर इन संतों का बड़ा प्रभाव पड़ा। परंतु महात्मा रामानंद का ऋण इन संतों तक परिमित नहीं है। इनकी शिष्य-परंपरा में आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास हुए जिनकी जगतप्रसिद्ध रामायण हिंदी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रत्न तथा उत्तर भारत की

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

धर्मप्राण जनता का सर्वस्व है। कबीर आदि संतों के संप्रदाय देश के कुछ कोनों में ही अपना प्रभाव दिखा सके और पढ़ी-लिखी जनता तक उनकी वाणी अधिक नहीं पहुँची, परंतु गोस्वामी तुलसीदास की कविता ऊँच-नीच, राजा-राव, पढ़े-बेपढ़े सबकी दृष्टि में समान रूप से आदरणीय हुई। ये गोस्वामी तुलसीदासजी स्वामी रामनंद के ही उपदेशों को ग्रहण करके चले थे, अतः स्वामी रामानंद का महत्त्व हम अच्छी तरह समझ सकते हैं और उनके उपदेशों से अंकुरित रामभक्ति को आज असंख्य घरों में फैली हुई देख सकते हैं।

हिंदी भाषा की संपूर्ण शक्ति का चमत्कार दिखानेवाले और हिंदी साहित्य को सर्वोच्च आसन पर बैठानेवाले भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास महात्मा रामानंद की शिष्य-परंपरा में थे। अपनी अद्भुत प्रतिभा और अलौकिक कवित्व-शक्ति के कारण वे देश और काल की सीमा का उल्लंघन कर सार्वदेशिक और सार्वकालिक हो गए हैं। आज तीन सौ वर्षों में उनकी कीर्तिश्री कम नहीं हुई, प्रत्युत निरंतर बढ़ती ही जाती है।

रामचरितमानस और विनयपत्रिका

अंत में ये काशी में आकर रहे और संवत् १६३१ में अपना प्रसिद्ध ग्रंथ "रामचरितमानस" लिखने बैठे। उसे उन्होंने लगभग ढाई वर्षों में समाप्त किया। रामचरितमानस का कुछ अंश काशी में लिखा गया है, कुछ अन्यत्र भी। इस ग्रंथ की रचना से इनकी बड़ी ख्याति हुई। उस काल के

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

प्रसिद्ध विद्वान् और संस्कृतज्ञ मधुसूदन सरस्वती ने इनकी बड़ी प्रशंसा की थी। स्मरण रखना चाहिए कि संस्कृत के विद्वान् उस समय भाषा-कविता को हेय समझते थे। ऐसी अवस्था में उनकी प्रशंसा का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। गोस्वामी तुलसीदास को उनके जीवन-काल में जो प्रसिद्धि मिली, वह निरंतर बढ़ती ही गई और अब तो वह सर्वव्यापिनी हो रही है।

रामचरितमानस लिख चुकने के पश्चात् गोस्वामी जी का आत्मसाधना की ओर संलग्न होना स्वाभाविक ही था। रामचरितमानस में अंत में उन्होंने "पायो परम विश्राम" की बात कही है। इसी विश्राम की निरंतर साधना उनके जीवन का लक्ष्य हुआ। जिन राम की कृपा से उन्हें यह लाभ हुआ था उन्हीं के गुणों का गान करते हुए उनमें अपनी सत्ता खो देना ही गोस्वामीजी की रामभक्ति के अनुकूल था और इसे उन्होंने अपने दीर्घ जीवन में सिद्ध भी किया। उनकी विनय-पत्रिका इसी लक्ष्य की पूर्ति है। भक्त का दैन्य और आत्मग्लानि दिखाकर, प्रभु की क्षमता और क्षमाशीलता का चित्र अपने हृदय-पटल पर अंकित कर तथा भक्त और प्रभु के अविच्छिन्न संबंध पर जोर देकर गोस्वामीजी ने विनय-पत्रिका को भक्तों का प्रिय ग्रंथ बना दिया। यद्यपि उनके उपास्य देव राम थे, तथापि पत्रिका में गणेश और शिव आदि की वंदना कर एक ओर तो गोस्वामी जी ने लौकिक पद्धति का अनुसरण किया है और दूसरी ओर अपने उदार हृदय का परिचय दिया है। उत्तर भारत में

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कट्टरपन की शृंखला को शिथिल कर धार्मिक उदारता का प्रचार करनेवालों में गोस्वामीजी अग्रणी हैं। ऐसी जनश्रुति है कि विनय-पत्रिका की रचना गोस्वामीजी ने काशी के गोपाल-मंदिर में की थी।

मृत्यु

गोस्वामीजी की मृत्यु काशी में, संवत् १६८० में, हुई थी। काशी में उस समय महामारी का प्रकोप था और तुलसीदासजी भी उससे आक्रांत हुए थे। उन्हें विपूचिका हो गई थी, पर कहा जाता है कि महावीर जी की वंदना करने से वह दूर हो गई। परंतु वे इसके उपरांत अधिक दिन जीवित नहीं रहे। ऐसा जान पड़ता है कि इस रोग ने उनके वृद्धि शरीर को जर्जर कर दिया था।

गोस्वामीजी का भारतीय जन समाज पर प्रभाव, उसके कारण-(१) अध्ययन

महाकवि तुलसीदास का जो व्यापक प्रभाव भारतीय जनता पर है उसका कारण उनकी उदारता, उनकी विलक्षण प्रतिभा तथा उनके उद्गारों की सत्यता आदि तो हैं ही, साथ ही उसका सबसे बड़ा कारण है उनका विस्तृत अध्ययन और उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति। "नानापुराणनिगमागमसम्मत" रामचरितमानस लिखने की बात अन्यथा नहीं है, सत्य है। भारतीय संस्कृत के अधार भूत तत्त्वों को गोस्वामीजी ने विविध शास्त्रों से ग्रहण किया था और समय के अनुरूप उन्हें अभिव्यंजित करके अपनी अपूर्व दूरदर्शिता का परिचय दिया था। यों तो उनके अध्ययन का

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

विस्तार अत्यधिक था, परंतु उन्होंने रामचरितमानस में प्रधानतः वाल्मीकि रामायण का आधार लिया है। साथ ही उन पर वैष्णव महात्मा रामानंद की छाप स्पष्ट देख पड़ती है। उनके रामचरितमानस में मध्यकालीन धर्मग्रंथों विशेषतः अध्यात्म-रामायण, योगवाशिष्ठ तथा अद्‌भुत रामायण का प्रभाव कम नहीं है। भुशुंड रामायण और हनुमन्नाटक नामक ग्रंथों का ऋण भी गोस्वामी जी पर है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि रामायण की कथा लेकर उसमें मध्यकालीन धर्मग्रंथों-के तत्त्वों का समावेश कर साथ ही अपनी उदार बुद्धि और प्रतिभा से अद्‌भुत चमत्कार उत्पन्न कर उन्होंने जिस अनमोल काव्य का सृजन किया, वह उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति के साथ ही उनकी प्रगाढ़ मौलिकता का भी परिचायक है।

गोस्वामीजी की समस्त रचनाओं में उनका रामचरितमानस ही सर्वश्रेष्ठ रचना है और उसका प्रचार उत्तर भारत में घर घर है। गोस्वामीजी का स्थायित्व और गौरव इसी पर सबसे अधिक अव-लंबित है। रामचरितमानस करोड़ों भारतीयों का एकमात्र धर्म-ग्रंथ है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में वेद, उपनिषद् तथा गीता आदि पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं, उसी प्रकार आज संस्कृत का लेशमात्र ज्ञान न रखने-वाली जनता भी करोड़ों की सख्या में रामचरितमानस को पढ़ती और वेद आदि की ही भाँति उसका सम्मान करती है।

(२) उदारता और सारग्राहिता

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

इस कथन का यह तात्पर्य्य नहीं है कि गोस्वामी जी के अन्य ग्रंथ निम्नकोटि के हैं। गोस्वामीजी की प्रतिभा सब में समान रूप से लक्षित होती है, किंतु रामचरितमानस की प्रधानता अनिवार्य है। गोस्वामीजी ने हिंदू धर्म का सच्चा स्वरूप राम के चरित्र में अंतर्निहित कर दिया है। धर्म और समाज की कैसी व्यवस्था होनी चाहिए; राजा प्रजा, ऊँच नीच, द्विज शूद्र आदि सामाजिक सूत्रों के साथ माता पिता, गुरु भाई आदि पारिवारिक संबंधों का कैसा निर्वाह होना चाहिए आदि—जीवन के गंभीर प्रश्नों का बड़ा ही विशद विवेचन इस ग्रंथ में मिलता है। हिंदुओं के सब देवता, उनकी सब रीति-नीति, वर्ण-आश्रम-व्यवस्था तुलसीदास जी को स्वीकार हैं। शिव उनके लिये उतने ही पूज्य है जितने स्वयं राम। वे राम भक्त होते हुए भी ज्ञानमार्ग के अद्वैतवाद पर आस्था रखते हैं। संक्षेप में वे व्यापक हिंदू धर्म के संकलित संस्करण हैं और उनके रामचरित-मानस में उनका वह रूप बड़ी ही मार्मिकता से व्यक्त हुआ है।

(३) अनेक ग्रंथ

गोस्वामीजी के रामचरितमानस और विनय-पत्रिका के अतिरिक्त दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्न आदि बड़े ग्रंथ तथा बरवै रामायण, रामलला नहछू, कृष्णगीतावली, वैराग्य-संदीपनी, पार्वती-मंगल और जानकी-मंगल छोटी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। उनकी बनाई अन्य पुस्तकों का नामोल्लेख शिवसिंह-सरोज में किया गया है परंतु उनमें से कुछ तो अप्राप्य हैं और

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

कुछ उनके उपर्युक्त ग्रंथों में सम्मिलित हो गई हैं तथा कुछ संदिग्ध हैं। साधारणतः ये ही ग्रंथ गोस्वामीजी रचित माने जाते हैं। बाबा वेणीमाधवदास ने गोस्वामीजी की "रामसतसई" का भी उल्लेख किया है। कुछ लोगों का कहना है कि उसकी रचना गोस्वामीजी की अन्य कृतियों के अनुकूल नहीं है; क्योंकि उसमें अनेक दोहे क्लिष्ट और पहेली आदि के रूप में आए हैं जो चमत्कारवादी कवियों को ही प्रिय हो सकते हैं, गोस्वामी तुलसीदास जैसे कला-मर्मज्ञों को नहीं। फिर भी वेणीमाधवदास का साक्ष्य सर्वथा अप्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

(४) रामचरित की व्यापकता

कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने नर-काव्य नहीं किया। केवल एक स्थान पर अपने काशीवासी मित्र टोडर की प्रशंसा में दो-चार दोहे कहे हैं, अन्यत्र सर्वत्र अपने उपास्य देव राम की ही महिमा गाई है और राम की कृपा से गौरवान्वित व्यक्तियों का राम कथा के प्रसंग में नाम लिया है। "कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना" का पद इस तथ्य की ओर संकेत करता है। यद्यपि गोस्वामीजी ने किसी विशेष मनुष्य की प्रशंसा नहीं की और अधिकर अपनी वाणी का उपयोग राम-गुण-कीर्त्तन में ही किया है, पर राम-चरित के भीतर मानवता के जो उदात्त आदर्श प्रस्फुटित हुए हैं वे मनुष्यमात्र के लिये कल्याणकर हैं। दोहावली में उन्होंने सच्चे प्रेम की जो आभा चातक और घन के

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

प्रेम में दिखलाई है, आलोकोपयोगी उच्छृंखलता का जो खंडन साखी-शब्दी-दोहाकारों की निंदा करके किया है, रामचरित-मानस में मर्यादावाद की जैसी सुंदर पुष्टि शिष्य की गुरु की अवहेलना को दंडित करके की है, रामराज्य का वर्णन करके जो उदात्त आदर्श रखा है उनमें और ऐसे ही अनेक प्रसंगों में गोस्वामीजी की मनुष्य-समाज के प्रति हित-कामना स्पष्टतः झलकती देखी जाती है। उनके अमर काव्य में मानवता के चिरंतन आदर्श भरे पड़े हैं।

(५) आंतरिक अनुभूति

यह सब होते हुए भी तुलसीदासजी ने जो कुछ लिखा है, स्वांतःसुखाय लिखा है। उपदेश देने की अभिलाषा से अथवा कवित्व-दर्शन की कामना से जो कविता की जाती है, उसमें आत्मा की प्रेरणा न होने के कारण स्थायित्व नहीं होता। कला का जो उत्कर्ष हृदय से सीधी निकली हुई रचनाओं में होता है वह अन्यत्र मिलना असंभव है। गोस्वामीजी की यह विशेषता उन्हें हिंदी कविता के शीर्षासन पर ला रखती है। एक ओर तो वे काव्य-चमत्कार का भद्दा प्रदर्शन करनेवाले कवियों से सहज में ही ऊपर आ जाते हैं और दूसरी ओर उपदेशों का सहारा लेनेवाले नीतिवादी भी उनके सामने नहीं ठहर पाते। कवित्व की दृष्टि से तुलसी की प्रांजलता, माधुर्य और ओज अनुपम तथा मानव-जीवन का सर्वांग निरूपण अप्रतिम हुआ है। मर्यादा और संयम की साधना में वे संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

इसके साथ ही जब हम भाषा पर उनके अधिकार तथा जनता पर उनके उपकार की तुलना अन्य कवियों से करते हैं तब गोस्वामीजी की यथार्थ महत्ता का साक्षात्कार स्पष्ट रीति से हो जाता है।

(६) स्वतंत्र उद्भावना

गोस्वामीजी की रचनाओं का महत्त्व उनमें व्यंजित भावों की विशदता और व्यापकता से ही नहीं, उनकी मौलिक उद्भावनाओं तथा चमत्कारिक वर्णनों से भी है। यद्यपि रामायण की कथा उन्हें महर्षि वाल्मीकि से बनी बनाई मिल गई थी, परंतु उसमें भी गोस्वामीजी ने यथोचित परिवर्तन किए हैं। सीता-स्वयंवर के पूर्व फुलवारी का मनोरम वर्णन तुलीदासजी की अपनी उद्भावना है। धनुष-भंग के पश्चात् परशुरामजी का आगमन उन्होंने अपनी प्रबंध-पटुता के प्रतीक-स्वरूप रखा है। कितनी ही मर्म-स्पर्शिनी घटनाएँ गोस्वामीजी ने अपनी ओर से सन्निहित की हैं, जैसे सीताजी का अशोक-वन में विरह-पीड़ित अवस्था में अशोक से आग माँगना और तत्क्षण हनुमान्जी का मुद्रिका गिराना। हनुमान्, विभीषण और सुग्रीव आदि राम भक्तों का चरित्र तुलसीदासजी ने विशेष सहानुभूति के साथ अंकित किया है। गोस्वामीजी के भरत तो गोस्वामीजी के ही हैं—भक्ति की मूर्त्ति। अपने युग की छाप भी रामचरितमानस में मिलती है जिससे वह युग-प्रवर्तक ग्रंथ बन सका है। कलियुग के वर्णन में उन्होंने सामयिक स्थिति का व्यंग्पूर्ण चित्र उपस्थित

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

किया है। ये सब तुलसी की अपनी मौलिकताएँ हैं जिनके कारण इनका मानस अन्य प्रांतीय भाषाओं में लिखे हुए राम-कथा के ग्रंथों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और काव्यगुणोपेत बन सका।

भाषा और काव्य-शैली

जायसी की भाषा और छंदों का विवेचन करते हुए हम कह चुके हैं कि उन्होंने जिस प्रकार दोहा-चौपाई छंदों में अवधी भाषा का आश्रय लेकर अपनी पद्मवात लिखी है, कुछ वर्षों के पश्चात् गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी उसी अवधी भाषा में दोहा-चौपाई छंदों में अपनी प्रसिद्ध रामायण की रचना की। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि जायसी संस्कृतज्ञ नहीं थे; अतः उनकी भाषा ग्रामीण अवधी थी, उसमें साहित्यिकता की छाप नहीं थी। परंतु गोस्वामीजी संस्कृतज्ञ और शास्त्रज्ञ थे; अतः उन्होंने कुछ स्थानों पर ठेठ अवधी का प्रयोग करते हुए भी अधिकांश स्थलों में संस्कृत-मिश्रित अवधी का व्यवहार किया है। इससे इनके रामचरितमानस में प्रसंगानुसार उपर्युक्त दोनों प्रकार की भाषाओं का माधुर्य दिखाई देता है। यह तो हुई उनके रामचरितमानस की बात। उनकी विनय-पत्रिका, गीतावली और कवितावली आदि व्रजभाषा व्यवहृत हुई है। शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी यह व्रजभाषा विकसित होकर गोस्वामीजी के समय तक पूर्णतया साहित्य की भाषा बन चुकी थी, क्योंकि सूरदास आदि भक्ति कवियों की विस्तृत

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

रचनाएँ इसमें हो रही थीं। गोस्वामीजी ने व्रजभाषा में भी अपनी संस्कृत पदावली का सम्मिश्रण किया और उसे उपयुक्त प्रौढ़ता प्रदान की। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर जायसी और सूर ने क्रमशः अवधी और व्रजभाषा में ही काव्य-रचना की थी वहाँ गोस्वामीजी का इन दोनों भाषाओं पर समान अधिकार हुआ और उन दोनों में संस्कृत के समावेश से नवीन चमत्कार उत्पन्न कर देने की क्षमता तो उनकी अपनी है।

गोस्वामी तुलसीदास के विभिन्न ग्रंथों में जिस प्रकार भाषा-भेद है, उसी प्रकार छंद-भेद भी है। रामचरितमानस में उन्होंने जायसी की तरह दोहे-चौपाइयों का क्रम रखा है, परंतु साथ ही हरिगीतिका आदि लंबे तथा सोरठा आदि छोटे छंदों का भी बीच बीच में व्यवहार कर उन्होंने छंद-परिवर्तन की ओर ध्यान रखा। रामचरित के लंकाकांड में जो युद्ध-वर्णन है, उसमें चंद आदि वीर कवियों के छंद भी लाए गए हैं। कवितावली में सवैया और कवित्त छंदों में कथा कही गई है जो भाटों की परंपरा के अनुसार है कवितावली में राजा राम की राज्यश्री का जो विशद वर्णन है, उसके अनुकूल कवित्त छंद का व्यवहार उचित ही हुआ है। विनय-पत्रिका तथा गीतावली आदि में व्रजभाषा के सगुणोपासक संत महात्माओं के गीतों की प्रणाली स्वीकृत की गई है। गीत-काव्य का सृजन पाश्चात्य देशों में संगीतशास्त्र के अनुसार हुआ है। यहाँ की लीरिक कविता आरंभ में वीणा के साथ गाई जाती थी। ठीक

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

उसी प्रकार हिंदी के गीत-काव्यों में भी संगीत के राग-रागिनियों को ग्रहण किया गया है। दोहावली, बरवै रामायण आदि में तुलसीदासजी ने छोटे छंदों में नीति आदि के उपदेश दिए हैं अथवा अलंकारों की योजना के साथ फुटकर भावव्यंजना की है। सारांश यह कि गोस्वामीजी ने अनेक शैलियों में अपने ग्रंथों की रचना की है और आवश्यकतानुसार उनमें विविध छंदों का प्रयोग किया है। इस कार्य में गोस्वामीजी की सफलता विस्मयकारिणी है। हिंदी की जो व्यापक क्षमता और जो प्रचुर अभिव्यंजना-शक्ति उनकी रचनाओं में देख पड़ती है वह अभूतपूर्व है। उनकी रचनाओं से हिंदी में पूर्ण प्रौढ़ता की प्रतिष्ठा हुई।

नाभादास

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, रामभक्ति की कविता गोस्वामी तुलसीदासजी कृतियों से इतनी ऊँची उठ गई कि उनके पीछे के रामभक्त कवियों की अधिक प्रसिद्धि न हो सकी। गोस्वामीजी के आलोक के सामने वे फीके देख पड़ते हैं। फिर भी उनके समकालीन भक्त नाभादासजी रामभक्ति के एक उल्लेखयोग्य कवि हैं। नाभादासजी का "भक्तमाल" भक्तों का प्रिय ग्रंथ रहा है और अब भी है। उसमें सांप्रदायिक विभेद का परित्याग कर अनेक महात्माओं की जीवनी और कीर्ति की प्रशस्ति लिखी गई है। इस रचना में संक्षिप्त सूत्रशैली का व्यवहार किया गया है जिससे अर्थ समझने में बड़ी कठिनाई होती है।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

प्रियादास नामक संत ने भक्तमाल की टीका लिखकर इस कठिनाई को दूर करने की सफल चेष्टा की है। प्रियादास नाभाजी के सौ वर्ष उपरांत हुए थे, फिर भी उन्होंने टीका बड़ी प्रमाणिक रीति से लिखी हैं।

नाभाजी स्वयं बड़े भक्त और संत थे। इनकी जाति का ठीक पता नहीं। कोई उन्हें डोम बतलाते हैं और कोई क्षत्रिय। गोस्वामी तुलसीदास से इनकी भेंट हुई थी। इनका जीवनकाल लगभग १६४० से १६८० तक रहा होगा। ये यद्यपि रामभक्त थे पर इनके गुरु अग्रदास, जिनकी प्रेरणा से इन्होंने भक्तमाल की रचना की थी, वल्लभ संप्रदाय के कृष्णभक्त कवि थे अग्रदास ने भी रामभक्ति की कुछ कविता की है। नाभादास की, रामचरित पर, एक पुस्तक अभी थोड़े दिन हुए मिली है। इसके अतिरिक्त उनके दो ग्रंथ और हैं जिनमें से एक ब्रजभाषा गद्य में है और दूसरा अवधी पद्य में।

प्राणचंद और हृदयराम

प्राणचंद चौहान और हृदयराम इन दोनों रामभक्त कवियों ने नाटकों की शैली में रामकथा कही है। उनके नाटक रंगशाला में खेले जाने योग्य नहीं हैं, केवल कथोपकथन के रूप में होने के कारण उनको नाटक कह दिया जाता है। फिर भी इतना अवश्य है कि रामभक्ति की कविता प्रबंध और मुक्तक काव्यों के रूप में नहीं लिखी गई, दृश्य काव्य की शैली पर लिखी गई। रामभक्ति से हिंदी कविता को जितनी व्यापकता और विस्तार मिला,

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कृष्णभक्ति से उतना नहीं। कृष्णभक्ति की कविता तो अधिकतर गीतकाव्यों की शैली पर ही लिखी गई।

प्राणचंद ने संवत् १६६७ में रामायण महानाटक लिखा और हृदयराम ने संवत् १६८० में संस्कृत हनुमन्नाटक के आधार पर हिंदी हनुमन्नाटक की रचना की। इन दोनों में हृदयराम की रचना अधिक प्रौढ़ और प्रसिद्ध हुई।

राम भक्ति की एक शाखा हनुमानभक्ति के रूप में भी स्फुरित हुई। गोस्वामी तुलसीदास का हनुमानबाहुक महावीरजी की स्तुति में लिखा गया था। इस प्रकार की पुस्तकों में रायमल्ल पांडे का लिखा हनुमच्चरित्र (१६९६) कुछ प्रसिद्ध है।

यहाँ हम केशवदास की रामचंद्रिका तथा इस श्रेणी की अन्य पुस्तकों का उल्लेख नहीं करते, क्योंकि इनके रचयिता रामभक्त नहीं थे और इनके काव्य भी भक्ति काव्य नहीं कहे जा सकते।

विश्वनाथसिंह और रघुराजसिंह

रामोपासक कवियों में महाराज विश्वनाथसिंह और महाराज रघुराजसिंह का नाम भी लिया जाता है। ये दोनों ही रीवाँ-नरेश रामभक्त थे, परन्तु महाराज विश्वनाथसिंह निर्गुण भक्ति की ओर भी झुके थे। और कबीर आदि पर आस्था रखते थे। विश्वनाथसिंह ने कितने ही ग्रंथों की रचना की जिनमें अनेक रामभक्ति के भी हैं; पर उनके ग्रंथों का विशेष प्रचार नहीं हुआ। महाराज रघुराजसिंह के "रामस्वयंवर" की

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

अच्छी प्रसिद्धि है परंतु साहित्यिक दृष्टि से उसका विशेष महत्त्व नहीं। उसमें युद्ध वर्णन के अवसर पर जिन अनेक शस्त्रों आदि का नामोल्लेख किया गया है उन्हें पढ़कर जी ऊब जाता है। इतिवृत्त के रूप में ही इसके प्रायः सब वर्णन हैं, अतः उनमें काव्यत्व की कमी है, फिर भी साधारण साहित्य-समाज में इस पुस्तक का पर्याप्त प्रचार है। इसमें विशेषकर महाराज रघुराजसिंह ने राजसी ठाट-बाट का वर्णन किया है।

आधुनिक युग भक्ति का युग नहीं है। फिर भी रामचरित के कुछ प्रसंगों को लेकर खड़ी बोली में कुछ खंडकाव्यों की रचना हुई है, परंतु वे भक्ति-काव्य नहीं कहला सकते। श्री मैथिलीशरण गुप्त की "पंचवटी" कविता-पुस्तक में राम का सीता और लक्ष्मण सहित पंचवटी-प्रवास वर्णित है। इन्हीं गुप्त ज़ी का "साकेत" नामक बड़ा काव्य-ग्रंथ भी निकला है जिसमें रामकथा कही गई है कुछ अन्य कवियों ने भी रामायण की कथा का आश्रय लेकर कविता की है, पर उनका नामोल्लेख यहाँ अनावश्यक है।

मैथिलीशरण

——

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

सातवाँ अध्याय

कृष्णभक्ति शाखा

कृष्णभक्ति की उत्पत्ति और विकास

भारतीय महापुरुषों के संबंध में यह बात विशेषतः सत्य है कि वे अपने जीवनकाल में तो साधारण यश तथा प्रसिद्धि पाते हैं, पर कुछ समय के उपरांत उनमें ईश्वर की कलाओं का सन्निवेश माना जाता और उनकी उपासना की जाती है। वाल्मीकि के मूलग्रंथ में राम एक शक्तिशाली नृपति के रूप में अंकित किए गए हैं, ईश्वर के अवतार के रूप में नहीं। परंतु उसी ग्रंथ के उत्तरकालीन अंश में ही राम भगवान् विष्णु के अंशावतार स्वीकृत किये गये हैं, और उनमें देवत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई है इसके उपरांत रामभक्ति का विकास होता गया और अंत में रामोपासक सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। इस सांप्रदायिक रूप में तो राम का स्थान सब देवताओं से ही नहीं, स्वयं विष्णु से भी बढ़कर माना गया है। यही नहीं, कबीर आदि के राम तो निर्गुण और सगुण से भी परे परब्रह्म कहे गये हैं। तुलसी आदि उदार-हृदय, समन्वयवादी संत भी राम को सर्वव्यापक और सर्वज्ञ बतलाते हैं। राम जिनके इष्टदेव हैं, उनके लिये वे ही सब कुछ हैं; उनके लिये सब जग ही सियाराममय है। कृष्ण की उपासना का भी उसी प्रकार

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

विकास हुआ है, जिस प्रकार राम की उपासना का हुआ। महाभारत के प्रारंभिक वर्षों में वे अवतार नहीं बने, पर भगवद्गीता में उनकी अवतारणा भगवान् कृष्ण के रूप में हुई जो ईश्वर की संपूर्ण कलाओं को लेकर नरलीला करने तथा संसार का भार उतारने आए थे। गीता में कृष्ण को सांप्रदायिक रूप नहीं मिला पर भगवत् पुराण में कृष्णभक्ति दृढ़ हो गई। इसके उपरांत तो कृष्णभक्ति के अनेक संप्रदाय चले जिनमें भगवान् कृष्ण के विभिन्न रूपों की उपासना होने लगी।

कृष्णोपासना के उन अनेक सम्प्रदायों के उल्लेख से यहाँ प्रयोजन नहीं जिनका हिंदी साहित्य से प्रत्यक्ष सम्बंध नहीं है। हम तो हिंदी साहित्य की कृष्णभक्ति शाखा का विवरण ही यहाँ देंगे और उन कृष्णभक्ति कवियों का उल्लेख करेंगे जिनसे हिंदी की श्रीवृद्धि हुई है। परंतु हिंदी के सभी कृष्णभक्ति कवि एक ही सम्प्रदाय के नहीं थे, अतएव उन्होंने विभिन्न रूपों में कृष्ण की उपासना की और उनकी स्तुति में अपनी वाणी का उपयोग किया। जब हम कालक्रमानुसार हिंदी के कृष्णोपासक कवियों पर दृष्टि डालते हैं, तब उनमें कितने ही भेद पाते हैं। भेद का कारण जहाँ वैयक्तिक रुचि अथवा प्रतिभा आदि है, वहाँ संप्रदाय-भेद भी है। उदाहरणार्थ विद्यापति और मीरबाई की रचनाओं तथा सूरदास आदि अष्ट छाप के कवियों की कृतियों में बहुत कुछ ऐसी विभिन्नता है जिसका कारण सांप्रदायिक मतों

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

की विभिन्नता है। इसी प्रकार स्वामी हरिदास और महात्मा हितहरिवंशजी में भी संप्रदाय-भेद के कारण अंतर देख पड़ता है। उनकी वाणी न तो आपस में ही मिलती है और न सूर आदि की वाणी से ही उसका मेल मिलता है। विभेद के कारणों का अनुसंधान करने पर यह पता लगता है कि विद्यापति और मीरा पर विष्णु स्वामी तथा निंबार्क मतों का अधिक प्रभाव था और सूरदास आदि अष्टछाप के कवि वल्लभाचार्य के मतानुयायी थे। इसी प्रकार स्वामी हरिदास निंबार्काचार्य के टट्टी संप्रदाय के थे, और हितहरिवंशजी ने राधा की भक्ति को प्रधानता देकर नवीन मत का सृजन किया था। ऐसे ही अन्य विभेद भी हैं।

विद्यापति और मीरा

भागवत पुराण में भक्ति का दृढ़ मार्ग निरूपित हुआ और मध्वाचार्य ने पहले पहल द्वैतमत का सृजन कर भक्त और भगवान् के संबंध को सिद्ध किया। मध्वाचार्य दक्षिण में उदीची नामक स्थान के रहनेवाले थे। उन्होंने पहले तो शांकर मत की शिक्षा पाई थी, पर पीछे महाभारत तथा भागवत पुराण का अध्ययन किया था। भागवत पुराण के अध्ययन का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे शंकर के ज्ञानमार्ग के विरोधी और भक्ति के समर्थक बन गए। उत्तर भारत में अनेक सिद्धांतों का प्रत्यक्ष में तो अधिक प्रभाव नहीं पड़ा, पर अनेक संप्रदाय उनके उपदेशों का आधार लेकर दक्षिण में खड़े हुए और देश के विस्तृत भूभागों

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

में फैले। हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में विद्यापति पर माध्व संप्रदाय का ऋण स्वीकार करना पड़ता है।

परंतु विद्यापति पर माध्व संप्रदाय का ही ऋण नहीं है, उन्होंने विष्णु स्वामी तथा निंबार्काचार्य के मतों को भी ग्रहण किया था। न तो भागवत पुराण में ही और न माध्वमत में ही राधा का उल्लेख किया गया है। कृष्ण के साथ विहार करनेवाली अनेक गोपियों में राधा भी हो सकती हैं, पर कृष्ण की चिर-प्रेयसी के रूप में वे नहीं देख पड़तीं। उन्हें यह रूप विष्णु स्वामी तथा निंबार्क संप्रदायों में ही पहले पहल प्राप्त हुआ था। विष्णु स्वामी मध्वाचार्य की ही भाँति द्वैतवादी थे। भक्त-माल के अनुसार वे प्रसिद्ध मराठा भक्त ज्ञानेश्वर के गुरु और शिक्षक थे। राधाकृष्ण की सम्मिलित उपासना इनकी भक्ति का नियम था। विष्णु स्वामी समकालीन निंबार्क नामक तैलंग ब्राह्मण का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने वृन्दावन में निवास कर गोपाल कृष्ण की भक्ति की थी। निंबार्क ने विष्णु स्वामी से भी अधिक दृढ़ता से राधा की प्रतिष्ठा की और उन्हें अपने प्रियतम कृष्ण के साथ गोलोक में चिर निवास करनेवाली कहा। राधा का यही चरम उत्कर्ष है। विद्यापति ने राधा और कृष्ण की प्रेमलीला का जो विशद वर्णन किया है, उस पर विष्णु स्वामी तथा निंबार्क मतों का प्रभाव प्रत्यक्ष है। विद्यापति राधा और कृष्ण के संयोग-शृंगार का ही विशेषतः वर्णन करते हैं। उसमें कहीं कहीं अश्लीलत्व भी आ गया है, पर अधिकांश

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

स्थलों में प्रिया राधा का प्रियतम कृष्ण के साथ बड़ा ही सात्त्विक और रस पूर्ण सम्मिलन प्रदर्शित किया गया है। हिंदी की प्रसिद्ध भक्त और कवियित्री मीराबाई के प्रसिद्ध पद "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" में गोपाल कृष्ण का स्मरण है जो निंबार्क संप्रदाय के प्रचलन के अनुसार है। मीराबाई के अनेक पदों में जो तन्मयता देख पड़ती है, वह वास्तव मेंप्रेमातिरेक के कारण है और निस्संदेह सात्त्विक है। विद्यापति और मीराबाई पर विष्णु स्वामी तथा निंबार्क मतों की छाप थी। विष्णु स्वामी सिद्धांतों में मध्वाचार्य के और निंबार्क स्वामी रामानुज के अनुयायी थे।

अष्टछाप और आचार्य वल्लभ

विद्यापति और मीरा के उपरांत कृष्णभक्ति के प्रसिद्ध अष्ट-छाप के कवियों का उदय हुआ। अष्टछाप में आठ कवि सम्मि-लित थे। ये वल्लभाचार्य के मतानुयायी थे और उन्हीं के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विट्ठलनाथजी द्वारा संघटित किए गए थे। गोसाईं विट्ठलनाथ ने अपने पिता आचार्य वल्लभ के उपदेशा-नुसार अत्यंत सरल तथा मधुर वाणी में भगवान् कृष्ण का यशोगान करनेवाले आठ सर्वोत्तम कवियों को चुनकर अष्टछाप संप्रदाय की प्रतिष्ठा की थी। अष्टछाप में सूरदास, कुंभनदास परमानंददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविंद स्वामी, चतुर्भुज-दास और नंददास सम्मिलित थे जिनमें पहले चार स्वयं आाचर्य वल्लभ के शिष्य थे और पिछले चार उनके पुत्र के।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

नीचे हम वल्लभाचार्य के जीवन तथा मत का संक्षिप्त विवरण देते हैं, क्योंकि अष्टछाप के कवियों से परिचित होने के लिये इसकी आवश्यकता है।

स्वामी वल्लभाचार्य का जन्म काशी के एक तैलंग ब्राह्मण के घर में संवत् १५३५ में हुआ था। इनके पिता विष्णु स्वामी संप्रदाय के अनुयायी थे। इन्हें काशी में शास्त्रीय शिक्षा मिली थी। ये संस्कृत के पंडित होकर बड़े शास्त्रार्थी बन गए थे और विशेषत: स्मार्तों का खंडन किया करते थे।

वल्लभाचार्य के संप्रदाय का तत्कालीन उत्तर भारत पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा, और कृष्णभक्ति के अन्य छोटे बड़े संप्रदाय इसके वेग में विलीन हो गए। ब्रजभाषा के अधिकांश भक्त कवि इसके अनुयायी थे और जिन कवियों ने इससे अलग रहकर रचना की है, उन पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव देख पड़ता है। विष्णु स्वामी तथा निंबार्क आदि के संप्रदाय इसके सामने दब गए। उत्तर में वल्लभ संप्रदाय तथा बंगाल में चैतन्य संप्रदाय के कवियों की ही धूम रही, अन्य सब मत फीके पड़ गए। हमारी सम्मति में रामानंद द्वारा आविर्भूत तथा तुलसीदास द्वारा परिपुष्ट रामभक्ति के तत्कालीन ह्रास का एक कारण कृष्णभक्ति के इन संप्रदायों का वेगपूर्ण अभ्युत्थान भी है। राधा और कृष्ण की उपासना-वाणी सारे उत्तर भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक गूँज उठी, जनता सब कुछ भूलकर उस सरस स्रोत में बह चली।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वल्लभाचार्य के शिष्यों में सर्वप्रधान, सूरसागर के रचयिता, हिंदी के अमर कवि महात्मा सूरदास हुए जिनकी सरस वाणी से देश के असंख्य सूखे हृदय हरे हो उठे और भग्नाश जनता को जीने का नवीन उत्साह मिला। इनका जन्म संवत् १५४० के लगभग हुआ था। आगरा से मथुरा जानेवाली सड़क के किनारे रुनकता नामक गाँव में इनकी जन्मभूमि थी। चौरासी वैष्णवों की वार्ता तथा भक्तमाल के साक्ष्य से ये सारस्वत ब्राह्मण ठहरते हैं, यद्यपि कोई कोई इन्हें महाकवि चंद बरदाई के वंशज भाट कहते हैं। इनके अंधे होने के सम्बंध में यह प्रवाद प्रचलित है कि वे जन्म से अंधे थे; पर एक बार जब वे कुएँ में गिर पड़े थे तब श्रीकृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए थे और वे दृष्टि-संपन्न हो गए थे। परंतु उन्होंने कृष्ण से यह कहकर अंधे बने रहने का वर माँग लिया कि जिन आँखों से भगवान् के दर्शन किए, उनसे अब किसी मनुष्य को न देखें। इस प्रवाद का आधार उनके दृष्टकुटों की एक टिप्पणी है। इसे असत्य न मानकर यदि एक प्रकार का रूपक मान लें तो कोई हानि नहीं। सूर वास्तव में जन्मांध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग रूपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मांध नहीं कर सकता। जान पड़ता है, कूएँ में गिरने के उपरांत उन्हें कृष्ण की कृपा से ज्ञानचक्षु मिले, पहले इस चक्षु से वे हीन थे। यही आशय उक्त कहानी से ग्रहण किया जा सकता है।

सूरदास

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

जब महात्मा वल्लभाचार्य से सूरदासजी की भेंट हुई थी तब तक वे वैरागी के वेष में रहा करते थे। तब से ये उनके शिष्य हो गए और उनकी आज्ञा से नित्य प्रति अपने उपास्य देव और सखा कृष्ण की स्तुति में नवीन भजन बनाने लगे। इनकी रचनाओं का बृहत् संग्रह सूरसागर है जिसमें एक ही प्रसंग पर अनेक पदों का संकलन मिलता है। भक्ति के आवेश में वीणा के साथ गाते हुए जो सरस पद उन अंध कवि के मुख से निस्सृत हुए, उनमें प्रतिभा का नवनवोन्मेष भरा हुआ है; उनकी मर्मस्पर्शिता और हृदयहारिता में किसी को कुछ भी संदेह नहीं हो सकता।

सूरसागर के आरंभिक नव स्कंधों में विनय के पद, सृष्टि-क्रम तथा चौबीस अवतारों का वर्णन, आर्यावर्त के नृपतियों का पौराणिक परिचय, भागवत पुराण की आध्यात्मिक व्याख्या आदि के विषय आए हैं। इनमें मुख्यतः श्रीमद्भागवत का ही तथा कहीं कहीं कुछ अन्य पुराणों का अनुसरण किया गया है। दशम स्कंध में कृष्ण-जन्म से कथा का आरंभ हुआ है। यशोदा के गृह में पहुँचकर कृष्ण धीरे धीरे बड़े होने लगे। उस काल की उनकी बाल-लीलाओं का जितना विशद वर्णन सूरदास ने किया उतना हिंदी के अन्य किसी कवि ने नहीं किया। कृष्ण अभी कुछ ही महीनों के हैं, माँ का दूध पीते हैं, माँ यह अभि-लाषा करती है कि बालक कब बड़ा होगा, कब इसके दो नन्हें नन्हें दाँत जमेंगे, कब यह माँ कहकर पुकारेगा, कब घुटनों के

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

बल घर भर में रेंगता फिरेगा आदि आदि। माँ बालक को दूध पिलाती है, न पीने पर उसे चोटी बढ़ने का लालच दिखाती है। उसे आकाश के चंद्रमा के लिए रोते देख थाल में पानी भरकर चाँद को बालक के लिये भूमि पर ला देती है। कितना वात्सल्य-स्नेह, कितना सूक्ष्म निरीक्षण और कितना वास्तविक वर्णन है। इस प्रकार के असंख्य सूक्ष्म भावों से युक्त अनेक रसपूर्ण पद कहे गए हैं। इन्हीं से उस युग की संस्कृति का निर्माण हुआ था, और इनमें उसका पूर्ण प्रतिबिंब भी मिलता है। कृष्ण कुछ बड़े होते हैं। मणि-खंभों में अपना प्रतिबिंब देखकर प्रसन्न होते और मचलते हैं। घर की देहली नहीं लाँघ पाते। कृष्ण और बड़े होते हैं, वे घर से बाहर जाते, गोप सखाओं के साथ खेलते-कूदते और बालचापल्य प्रदर्शित करते हैं। उनके माखन-चोरी आदि प्रसंगों में गोपिकाओं के प्रेम की व्यंजना भरी पड़ी है। गोपियाँ बाहर से यशोदा के पास उपालंभ आदि लाती हैं, पर हृदय से वे कृष्ण की लीलाओं पर मुग्ध हैं। प्रेम का यह अंकुर बड़ी ही शुद्ध परिस्थिति में देख पड़ता है। कृष्ण की यह किशोरावस्था है, कलुष या वासना का नाम भी नहीं है। शुद्ध स्नेह है। आगे चलकर कृष्ण सारे ब्रजमंडल में सबके स्नेह-भाजन बन जाते हैं। उनका गोचारण उन्हें मनुष्यों के परिमित क्षेत्र से ऊपर उठाकर पशुओं के जगत् तक पहुँचा देता है। वंशीवट और यमुनाकुंजों की रमणीक स्थली में कृष्ण की जो सुंदर मूर्ति गोप-गोपिकाओं के साथ मुरली बजाते

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

और स्नेहलीला करते अंकित की गई है, वैसी सुषमा का चित्रण करने का सौभाग्य संभवतः संसार के किसी अन्य कवि को नहीं मिला। व्रजमंडल की यह महिमा अपार है। कृष्ण का व्रज-निवास स्वर्ग को भी ईर्ष्यालु करने की क्षमता रखता है।

गोपिकाओं का स्नेह बढ़ता है। वे कृष्ण के साथ रासलीला में संमिलित होती हैं, अनेक उत्सव मनाती हैं। प्रेममयी गोपिकाओं का यह आचरण बड़ा ही रमणीय है। उसमें कहीं से अस्वाभाविकता नहीं आ सकी। कोई कृष्ण की मुरली चुराती, कोई उन्हें अबीर लगाती और कोई चोली पहनाती है। कृष्ण भी किसी की वेणी गूँथते, किसी की आँखें मूँद लेते और किसी को कदंब के तले वंशी बजाकर सुनाते हैं। एकाध बार उन्हें लज्जित करने की इच्छा से चीरहरण भी करते हैं। गोपीकृष्ण की यह संयोगलीला भक्तों का सर्वस्व है।

संयोग के उपरांत वियोग होता है। कृष्ण वृंदावन छोड़कर मथुरा चले जाते हैं। वहाँ राजकार्यों में संलग्न हो जाने के कारण प्यारी गोपियों को भूल से जाते हैं। गोपिकाएँ विरह में व्याकुल नित्य प्रति उनके आने की प्रतीक्षा में दिन काटती हैं। कृष्ण नहीं आते। गोपियों के भाग्य का यह व्यंग्य उन्हें कुछ देर के लिये विचलित कर देता है। उद्धव उन्हें ज्ञान समझाने आते हैं, पर उनके ज्ञानोपदेश को वे स्वीकार नहीं करती। कृष्ण की साकार अनंत सौंदर्यशालिनी मूर्ति उनके हृदय-पटल

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पर अमिट अंकित है। कृष्ण चाहे जहाँ रहें, वे उन्हें भूल नहीं सकतीं। यह अनंत प्रेम का दिव्य संदेश भक्तों के हृदय का दृढ़ अवलंब है।

इसी कथानक के बीच कृष्ण के लोक-रक्षक स्वरूप की व्यंजना करते हुए उनमें असीम शक्ति की प्रतिष्ठा की गई है। थोड़ी आयु में ही वे पूतना जैसी महाकाय राक्षसी का वध कर डालते हैं। आगे चलकर केशी, बकासुर आदि दैत्यों के वध और कालिय-दमन आदि प्रसंगों को लाकर कृष्ण के बल और वीरता का प्रदर्शन किया गया है। परंतु हमको यह स्वीकार करना पड़ता है कि सूरदास ने ऐसे वर्णनों की ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया है। सूरदास के कृष्ण महाभारत के कृष्ण की भाँति नीतिज्ञ और पराक्रमी नहीं हैं; वे केवल प्रेम के प्रतीक और सौंदर्य की मूर्ति हैं।

कृष्ण के शील का भी थोड़ा-बहुत आभास सूर ने दिया है। माता यशोदा जब उन्हें दंड देती हैं, तब वे रोते कलपते हुए उसे झेलते हैं। इसी प्रकार जब गोचारण के समय उनके लिये छाक आती है, तब वे अकेले ही नहीं खाते, सबको बाँटकर खाते हैं और कभी किसी का जूठा लेकर भी खा लेते हैं। बड़े भाई बलदेव के प्रति भी उनका सम्मान-भाव बराबर बना रहता है। यह सब होते हुए भी यह कहना पड़ता है कि सूरदास में कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति की ही प्रधानता है, रामचरितमानस की भाँति उसमें लोकादर्शों की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

सूरदास ने फुटकर पदों में राम-कथा भी कही है; पर वह वैसी ही बन पड़ी है, जैसे तुलसी की कृष्ण-गीतावली। इसके अतिरिक्त उनके कुछ दृष्टकूट और कूट पद भी हैं जिनकी क्लिष्टता का परिहार विशेषज्ञ ही कर सकते है। काव्य की दृष्टि से कूटों की गणना निम्न श्रेणी में होगी। सूरदास की कीर्ति को अमर कर देने और हिंदी कविता में उन्हें उच्चासन प्रदान करने के लिये उनका बृहदाकार ग्रंथ सूरसागर ही पर्याप्त है। सूर-सागर हिंदी की अपने ढंग की अनुपम पुस्तक है शृंगार और वात्सल्य का जैसा सरस और निर्मल स्रोत इसमें वहा है वैसा अन्यत्र नहीं देख पड़ता। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों तक सूर की पहुँच हैं, साथ ही जीवन का सरल अकृत्रिम प्रवाह भी उनकी रच-नाओं में दर्शनीय है। यह ठीक है कि लोक के संबंध में गंभीर व्याख्याएँ सूरदास ने अधिक नहीं की, पर मनुष्यजीवन में कोमलता, सरलता और सरसता भी उतनी ही प्रयोजनीय है, जितनी गंभीरता। तत्कालीन स्थिति को देखते हुए तो सूरदास का उद्योग और भी स्तुत्य है। परंतु उनकी कृत तत्कालीन स्थिति से संबंध रखती हुई भी, सर्वकालीन और चिरंतन है। उनकी उत्कट कृष्णभक्ति ने उनकी सारी रचनाओं में जो रम-णीयता भर दी है, वह अतुलनीय है। उनमें नवोन्मेषशालिनी अद्भुत प्रतिभा है। उनकी पवित्र वाणी में जो अनूठी उक्तियाँ आपसे आप आकर मिल गई हैं, अन्य कवि उनकी जूठन से ही संतोष करते रहे हैं। सूरदास हिंदी के अन्यतम कवि हैं।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

उनके जोड़ का कवि गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर दूसरा नहीं है। इन दोनों महाकवियों में कौन बड़ा है, यह निश्चयपूर्वक कह सकना सरल काम नहीं। भाषा पर अवश्य तुलसीदास का अधिकार अधिक व्यापक था। सूरदास ने अधिकतर व्रज की चलती भाषा का ही प्रयोग किया है। तुलसी ने व्रज और अवधी दोनों का प्रयोग किया है और संस्कृत का पुट देकर उनको पूर्ण साहित्यिक भाषा बना दिया है। परंतु भाषा को हम काव्य-समीक्षा में अधिक महत्त्व नहीं देते। हमें भावों की तीव्रता और व्यापकता पर विचार करना होगा। तुलसी ने रामचरित्र का आश्रय लेकर जीवन की अनेक परिस्थितियों तक अपनी पहुँच दिखलाई है। सूरदास के कृष्णचरित्र में उतनी विविधता न हो किंतु प्रेम की मंजु छवि का जैसा अंतर-बाह्य चित्रण सूरदास जी ने किया है वह भी अद्वितीय है। मधुरता सूर में तुलसी से अधिक है। जीवन के अपेक्षाकृत निकटवर्ती क्षेत्र को लेकर उसमें अपनी प्रतिभा का पूर्ण चमत्कार दिखा देने में सूर की सफलता अद्वितीय है। सूक्ष्मदर्शिता में भी सूर अपना जोड़ नहीं रखते। तुलसी का क्षेत्र सूर की अपेक्षा भिन्न है। व्यवहार-दशाओं की अधिकता तुलसी तथा प्रेम की अधिक विस्तृत व्यंजना सूर के काव्य में प्राप्त होती है। पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से दोनों का समान अधिकार है। दोनों ही हमारे सर्वश्रेष्ठ जातीय कवि हैं।

अष्टछाप के अन्य कवियों में रासपचाध्यायी, भ्रमरगीत आदि के रचयिता "सब कवि गढ़िया नंददास जड़िया" के

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

लक्ष्य सुंदर अनुप्रासमिश्रित संस्कृत-भाषामय पदावली का प्रणयन करनेवाले सूरदास के ही समकालीन नंददासजी हुए जिन्होंने भागवत की कथा लेकर काव्य रचना की। इन्होंने अपने भ्रमरगीत में सगुणोपासना का समर्थन शास्त्रीय पद्धति पर और हार्दिक अनुभूति के आधार पर किया है। इनका भ्रमरगीत हिंदी का उत्कृष्ट विरह-काव्य है। इनके अतिरिक्त राधा-कृष्ण के प्रेम में मग्न सरस शृंगारिक रचना पर कृष्णदास, अपने पदों से आचार्य वल्लभ को भावमग्न करने की क्षमता रखनेवाले कन्नौज-निवासी परमानंददास, अकबर के निमंत्रण और सम्मान की परवा न करनेवाले सच्चे भक्त कुंभनदास, उनके पुत्र चतुर्भुजदास, व्रज भूमि और व्रजेश की ओर अनन्यभाव से आकर्षित छीत स्वामी, गोवर्द्धन पर्वत पर कदंब उपवन लगाकर निवास करने वाले गायक गोविंद स्वामी आदि अष्टछाप के शेष कवि हैं। प्रत्येक ने भक्ति-भाव-संयुक्त कृष्ण की उपासना की और पूरी क्षमता से प्रेम और विरह का सुंदर गेय पद बनाए। सबकी वाणी में वह तन्मयता है जो गीतकाव्य के लिये परम उपयोगिनी है। सरस भक्तिपूर्ण पदों का यह प्रवाह रुका नहीं, चलता ही रहा। आगे चलकर जब कृष्ण की उपासना में लौकिक विषय-वासनाएँ आ मिलीं, तब कविता अपने उच्चासन से गिरी और मनुष्य की भोग-वृत्तियों के परितोष का साधन बन गई। इसके लिये कुछ समालोचक इन भक्त कवियों पर दोषारोपण करते

अन्य कवि

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

हैं। उनके मत में भक्त कवियों की रचनाओं में जो शृंगारिकता है वही बीज बनकर हिंदी के पिछले समय की रचनाओं में व्याप्त हो गई। परतु इसके लिये हम भक्त कवियों को दोषी नहीं ठहरा सकते। प्रत्येक सुंदर वस्तु का दुरुपयोग हो सकता है; पर इसके लिये सुन्दर वस्तु की निंदा करना व्यर्थ है। पिछले खेवे की गंदी रचनाओं का कारण तत्कालीन जनता की विलास-प्रिय मनोवृत्ति है, भक्तों की पूतवाणी नहीं। शुद्ध प्रेम का प्रवाह बहाकर भगवान् कृष्ण की स्तुति में आत्मविस्मरण कर देनेवाले भक्त कवियों का हिंदी कविता पर जो महान् ऋण है, उसे हम सभी स्वीकार करेंगे।

हितहरिवंश, हरिदास, रसखान

अष्टछाप के बाहर रहकर भक्तिकाव्य की रचना करनेवालों में हितहरिवंश और स्वामी हरिदास विशेष रीति से उल्लेखनीय हैं, क्योंकि ये दोनों ही उत्कृष्ट पदों के प्रणेता और नवीन संप्रदायों के स्रष्टा हुए। हितहरिवंशजी माध्व और निबार्क मतों से प्रभावित थे, पर उन्होंने राधा की उपासना को ग्रहण कर राधावल्लभी सप्रदाय का सृजन किया। उन्होंने "राधा-सुधानिधि" और "हित चौरासी" नामक दो पुस्तकें लिखी जिनमें पहली संस्कृत में है। इसके अतिरिक्त उनके स्फुट पद भी मिलते हैं। इनके मतानुसार राधा रानी हैं, कृष्ण उनके दास हैं, राधा की उपासना से कृष्ण का प्रसाद मिल सकता है। "हित चौरासी" के सभी पद अत्यंत कोमल और सरस

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

भावापन्न हैं। इनके शिष्यों में ध्रुवदास और व्यासजी प्रधान हुए, जिनकी रचनाओं से हिंदी की पर्याप्त श्रीवृद्धि हुई।

स्वामी हरिदास निंबार्क मतानुयायी थे, पर उन्होंने अपना अलग संप्रदाय खोला जो टट्टी संप्रदाय कहलाया। ये प्रसिद्ध गायक और कवि थे। अकबरी दरबार के प्रख्यात गायक तानसेन के और स्वयं अकबर के ये संगीतगुरु कहे जाते हैं। इनकी रचनाओं में संगीत की राग-रागिनियों का सुंदर समावेश हुआ है।

कृष्णभक्ति कवियों के इस अभ्युत्थान-काल में हम अत्यंत सरस पदों के रचयिता सच्चे प्रेममग्न कवि रसखान को नहीं भूल सकते, जो विधर्मी होते हुए भी ब्रज की अनुपम मधुरिमा पर मुग्ध और कृष्ण की ललित लीलाओं पर लट्टू थे। जाति-पाँति के बंधनों के बहुत ऊपर जो शुद्ध प्रेम का सात्विक बंधन है, उसी में रसखान बँधे थे। उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का सरस और सानुप्रास प्रवाह मनोमुग्धकारी बन पड़ा है। हिंदी के मुसलमान कवियों में रसखान का स्थान बहुत ऊँचा है। जायसी आदि की भाँति ये बाहर के मतों में लिप्त न रहकर भगवान् कृष्ण की सगुणोपासना में लीन हुए। यह उनके उदार हृदय का परिचायक और तत्कालीन भक्ति प्रवाह के सर्वतोव्याप्त प्रसार का द्योतक है।

कृष्ण-भक्ति की कविता इस काल के उपरांत कम हो चली। अकबर के सुख-समृद्धि-पूर्ण साम्राज्य में कृष्ण की भक्ति को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

फूलने फलने का अवसर मिला था। अकबर की धर्मनीति विशेष उदार थी; अतः उसके शासनकाल में विना किसी विघ्न-बाधा के अनेक धार्मिक संप्रदाय विकसित हुए थे। प्रत्येक संप्रदाय अपने इच्छानुसार उपसना कर सकता था और अपनी रुचि के अनुसार मंदिरों का निर्माण कर सकता था। जनता की समृद्धि के मंदिर-निर्माण में और भी सहायता मिली थी। परंतु अकबर के उपरांत परिस्थिति वदली। अकबर की भाँति सहृदयता और उदार मनोभावोंवाला दूसरा नृपति दिल्ली के सिंहासन पर नहीं बैठा। साथ ही धन-संपत्ति की वृद्धि से स्वभावतः विलास की ओर अधिक प्रेरणा मिली। हिंदी साहित्य भी अब अधिक प्रौढ़ हो चुका था। उपर्युक्त कारणों से साहित्य का प्रवाह धार्मिक क्षेत्र से निकलकर दूसरी ओर बहा रीतिग्रंथों और मुक्तक शृंगारिक रचनाओं की ओर प्रवृत्ति बढ़ी। परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उस काल के उपरांत कृष्णउपासना का क्रम एकदम से टूट गया और भक्तिकाव्य की रचना सर्वथा बंद हो गई। ऐसा नहीं हुआ, शृंगार की वृद्धि में शुद्ध भक्ति एकदम खो नहीं गई। वल्लभाचार्य की पाँचवीं पीढ़ी में भक्तवर नागरीदास हुए जिनके रचे ७३ भक्ति ग्रंथ मिले हैं। उनकी रचनाएँ उच्च कोटि की हैं। उनके अतिरिक्त विष्णु स्वामी संप्रदाय में अलबेली अली नाम भक्त कवि विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुए इनकी "समय प्रबंध पदावली" बड़ी ही

पीछे के कृष्ण-भक्त

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

सरस और भावपूर्ण रचना है। इन्हीं के समकालीन राधावल्लभी संप्रदाय में चाचा हितवृंदावनदास हुए जिनका पदों का विस्तृत सग्रह प्राप्त हुआ है। यद्यपि इनकी रचनाओं में बहुत से पुराने भक्तों के भाव आए हैं, पर इनकी इतनी अधिक कृतियों में मौलिक उद्भावनाएँ भी कम नहीं हैं। ब्रजवासीदास का प्रसिद्ध ग्रंथ "ब्रजविलास" प्रबंधकाव्य की शैली पर दोहे चौपाइयों में लिखा गया, पर इसमें इस काल की भक्ति का ह्रास बोल रहा है। ग्रंथ साधारण जनता में थोड़ी सी प्रसिद्धि पासका। इसके अतिरिक्त सबलसिंह चौहान ने महाभारत का अनुवाद किया, पर उन्हें भक्त-कवि मानना ठीक न होगा।

आधुनिक युग भक्ति का नहीं है, परंतु ब्रजभाषा के कुछ कवियों ने कृष्णसंबंधी कविता की है। स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण कविरत्न के कुछ पदों में कृष्ण-भक्ति की अच्छी झलक देख पड़ी, पर उनकी असमय मृत्यु से वह अधिक स्थायी न हो सकी। वर्तमान कवियों में वियोगी हरिजी के कुछ गद्य-काव्यों में कृष्ण के प्रति स्नेह देख पड़ता है। गद्यकाव्यों में ही नहीं, कुछ फुटकर पदों में भी इन्होंने भक्तों की भाँति अपने कृष्णानुराग की व्यंजना की है जो सुंदर भी हुई है कुछ अन्य भक्त भी हैं; पर उनकी रचनाएँ साहित्यकोटि में नहीं आतीं। कृष्ण के जीवन के एक अंश को लेकर पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने "प्रियप्रवास" की रचना की है; पर उसमें कृष्ण में देवत्व की प्रतिष्ठा नहीं की गई, वे महापुरुष मात्र माने गए हैं, श्री मैथिली-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

शरण गुप्त ने मधुसूदन दत्त के "विरहिणी-व्रजांगना" काव्य का हिंदी में अनुवाद किया है। उसमें राधा के विरह की व्यंजना हुई है, पर पुराने भक्तों ने जितनी तन्मयता के साथ कृष्ण-भक्ति के उद्गार व्यक्त किए थे, इन दिनों उसका अल्पांश भी कठिनता से देख पड़ता है। अभी हाल में द्वापर' नामक उनका स्वतंत्र काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुआ है जिसमें श्रीकृष्ण-संबंधिनी सुंदर चर्चा है।

कृष्णभक्ति-काव्य का चरम उत्कर्ष सूरदास की रचनाओं में देख पड़ा। सूरदास अकबर के समकालीन थे। अकबर के शासनकाल में सभी कलाओं की अनेकमुखी उन्नति हुई थी। साहित्य और कविता पर सम्राट् का पर्याप्त अनुराग था। वे स्वयं ब्रजभाषा की कविता करते थे। ऐसी अवस्था में उनके शासन-समय में साहित्य की उन्नति होना स्वाभाविक ही था। केवल कृष्णभक्ति की कविता की उन्नति ही उस काल में नहीं हुई थी वरन् अनेक अन्य विषयों से संबंध रखनेवाली कविताओं का भी उस काल में विकास हुआ था। इस विकास को मुख्यतः दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक तो वह जो अकबर के दरबार से संपर्कित होने के कारण उससे प्रत्यक्ष संबंध रखता है; और दूसरा वह जो देश और साहित्य की सामान्य अवस्थाओं के आधार पर हुआ, अतः जिसमें अकबर का हाथ प्रत्यक्ष तो नहीं देख पड़ता, हाँ दूर से भले ही कुछ संबंध ठहरे।

कृष्णभक्ति काल की अन्य रचनाएँ

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पहली श्रेणी शृंगार और नीति के फुटकर रचनाकारों और कवियों की है और दूसरी में रीतिग्रंथ लिखनेवाले वे कवि आते हैं जो अधिकतर संस्कृत के पंडित और राजदरबारी थे। पहले वर्ग के प्रतिनिधि कवि रहीम, गंग और नरहरि आदि तथा दूसरे के महाकवि केशवदास थे। इनके अतिरिक्त सेनापति आदि इसी काल के कुछ अन्य कवि हुए, जिन्हें भी पहले वर्ग में ही रखा जा सकता है।

रहीम

रहीम अकबर के दरबार के उच्च कर्मचारी होते हुए भी हिंदी कविता की ओर खिंचे थे। नीति के सुंदर सुंदर दोहे इन्होंने बड़ी मार्मिकता से कहे। जीवन के सुख-वैभव का अच्छा अनुभव करने के कारण रहीम की तत्संबंधो उक्तियों में तीव्र भावव्यंजना है। दोहों के अतिरिक्त इन्होंने बरवै, सोरठा, सवैया, कवित्त आदि अनेक छंदों तथा संस्कृत के वृत्तों में रचना की है। इनका बरवै छंदों में लिखा नायिका-भेद ठेठ अवधी के माधुर्य से समन्वित है। कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास तक ने इससे प्रभावित होकर इसी छंद में बरवै रामायण लिखी थी। गोस्वामीजी की ही भाँति रहीम का अवधी और ब्रज भाषाओं पर समान अधिकार था और गोस्वामीजी की रचनाओं की भाँति इनकी रचनाएँ भी जनता में अत्यधिक प्रचलित हुईं। गोस्वामीजी से इनकी भेंट हुई थी और दोनों में सौहार्द भाव भी था। ये बड़े ही उदारहृदय दानी थे और इनका अनुभव बड़ा ही विस्तृत, सूक्ष्म और व्यावहारिक था।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

गंग और नरहरि दोनों अकबर के दरबार के श्रेष्ठ हिंदू कवि थे। गंग की शृंगार और वीर रस की जो रचनाएँ संग्रहों में मिली हैं, उनसे इनके भाषा-अधिकार और वाग्वैदग्ध्य का पता चलता है। जनता में इनका बड़ा नाम है, परंतु इनकी रचित एक भी पुस्तक अब तक नहीं मिली। "तुलसी गंग दोऊ भए सुकविन के सरदार" की पंक्ति इन्हीं को लक्ष्य करके कही गई है। नरहरि वंदीजन अकबर के दरबार में सम्मानित हुए थे। ऐसा कहते हैं कि बादशाह ने इनका एक छप्पय सुनकर अपने राज्य में गोवध बंद कर दिया था। नीति पर इन्होंने अधिक छंद लिखे।

गंग और नरहरि

अकबर के दरबारियों में बीरबल और टोडरमल भी कवि हो गए हैं। बीरबल अकबर के मंत्रियों में से थे और अपनी वाक्चातुरी तथा विनोद के लिये प्रसिद्ध थे। इनके आश्रय में कवियों को अच्छा सम्मान मिला था और इन्होंने स्वयं ब्रजभाषा में सरस और सानुप्रास रचना की थी। महाराज टोडरमल के नीति-संबंधी फुटकर छंद मिलते हैं जो कविता की दृष्टि से बहुत उच्च कोटि के नहीं हैं। इनके अतिरिक्त मनोहर, होलराय आदि कवि भी अकबरी दरबार में थे। स्वयं बादशाह अकबर की भी ब्रज-भाषा में कुछ रचनाएँ पाई जाती हैं। ब्रजभाषा को इतना बड़ा राज-सम्मान इनके पहले कभी नहीं मिला था।

बीरबल और टोडर

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

दरबार से असंपर्कित कवियों में सेनापति का स्थान सर्वोच्च है। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण और अच्छे भक्त थे। पहले ये किसी दरबार में रहे हों, पर जीवन के पिछले अंश में तो ये संन्यासी हो गए थे। इन्होंने षट्ऋतुओं का वर्णन किया है जो बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। इन्हें प्रकृति की सूक्ष्म सूक्ष्म बातों का अनुभव भी था और इनका निरीक्षण भी विशेष मार्मिक था। इनकी पिछले समय की भक्ति और विराग की रचनाएँ चित्त पर स्थायी प्रभाव डालती हैं। भाषा व्रज की ग्रामीण होते हुए भी अलंकृत है। इनका कवित्त-रत्नाकर अब प्रकाशित हो गया है।

सेनापति

इसी काल की कृतियों में नरोत्तमदास का "सुदामा-चरित्र" भी है, जो कविता की दृष्टि से अच्छा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अकबर और जहाँगीर के राजत्वकाल में हिंदी कविता, क्या भाषा और क्या भाव की दृष्टि से, विशेष प्रौढ़ हो गई। इस काल में थोड़ी सी रचना गद्य में भी हुई; पर हिंदी में तब तक गद्य के विकास का युग नहीं आया था।

——

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

आठवाँ अध्याय

रीति काल

हिंदी में भी सूर और तुलसी के समय तक साहित्य की इतनी अधिक अभिवृद्धि हो चुकी थी कि कुछ लोगों का ध्यान भाषा और भावों को अलंकृत करने तथा संस्कृत की काव्यरीति का अनुसरण करने की ओर खिंच रहा था। इसका यह अर्थ नहीं है कि सूर और तुलसी तथा उनके पूर्व के सत्कवियों में आलंकारिकता नहीं थी। अथवा वे काव्य-रीति से परिचित हीं न थे। ऐसी बात नहीं थी अनेक कवि पूर्ण शास्त्रज्ञ और काव्यकलाविद् थे। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म आलंकारिक शैलियों का पूरा पूरा ज्ञान रखते थे। स्वयं महात्मा तुलसीदासजी ने अपनी अनभिज्ञता का विज्ञापन देते हुए भी व्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर अपना पूर्ण आधिपत्य तथा काव्य-रीति का सूक्ष्मतम अभिज्ञान दिखाया है। अंतर इतना ही है कि उन्हें काव्य-कला को साधन मात्र बनाकर रचना करनी थी, साध्य बनाकर नहीं। अतएव उन्होंने अलंकारों आदि से सहायक का काम लिया है, स्वामी का नहीं। इसके विपरीत पीछे के जो कवि हुए, उन्होंने काव्य-कला की परिपुष्टि को ही प्रधान मानकर शेष सब बातों को गौण स्थान

रीति काल का आरंभ

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

दिया और मुक्तकों के द्वारा एक एक अलंकार, एक एक नायिका अथवा एक एक ऋतु का वर्णन किया है। आगे चलकर यह प्रथा इतनी प्रचलित हुई कि बिना रीतिग्रंथ लिखे कवि-कर्म पूरा नहीं समझा जाने लगा। हिंदी साहित्य के इस काल को हम इसी लिये रीतिकाल कहते हैं।

रीति-ग्रंथकार कवियों का स्वरूप ठीक ठीक समझने के लिये उनके आविर्भाव-काल की परिस्थितियों पर ध्यान देना होगा। भक्ति-काल के अंतिम चरण में कृष्णभक्ति की कविता की प्रधानता थी। कवियों में अधिकांश ब्रजभाषा के मुक्तक छंदों तथा गीतों के द्वारा कृष्ण की ललित लीलाओं के वर्णन की परिपाटी चली थी। कृष्ण और राधा के सौंदर्य-वर्णन में भक्त कवियों ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। प्रेम और विरह-लीला तथा हास आदि का बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन भक्त कवियों ने किया था। वह यद्यपि उनके पवित्र हृदय से निस्सृत होने के कारण पूत भावनाओं से समन्वित था, पर साधारण पाठकों की लौकिक दृष्टि में उसमें शृंगारिकता ही अधिक प्रतीत होती है। राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन करके यद्यपि भक्त और भगवान् के संबंध की व्यंजना की गई थी, पर उस तथ्य को समझकर ग्रहण कर सकना सबका काम नहीं था। इसके अतिरिक्त राजदरबारों में हिंदी कविता को अधिकाधिक आश्रय मिलने के कारण कृष्ण-भक्ति की कविता को अधःपतित होकर वासनामय उद्गारों में परिणत हो जाने का अधिक अवसर

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मिला। तत्कालीन नरपतियों की विलास-चेष्टाओं की परितृप्ति और अनुमोदन के लिये कृष्ण एवं गोपियों की ओट में हिंदी के कवियों ने कलुषित प्रेम की शत सहस्र उद्भावनाएँ कीं। जनता में भी कृष्ण-भक्ति के नाम पर मनमानी लीलाएँ करने की प्रवृत्ति बढ़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि राजाओं से पुरस्कार पाने तथा जनता द्वारा समादृत होने के कारण रीति काल की कविता शृंगाररसमयी हो गई और अन्य प्रकार की कविताएँ उसके सामने दब सी गईं।

हिंदी में रीति

हिंदी में जिस समय रीति ग्रंथों का निर्माण प्रारंभ हुआ था, उस समय संस्कृत के अनेक संप्रदाय बन चुके थे और साहित्य के विद्यार्थियों के सामने थे। वास्तव में अलंकार-शास्त्रियों ने काव्य संबंधी समीक्षा को अपने अपने सिद्धांतों के अनुसार वैज्ञानिक भित्ति पर खड़ा किया था, उसमें नवीन उद्भावना या भ्रमसंशोधन के लिये जगह नहीं थी। केवल रुचिविभेद के अनुसार साहित्य-सेवियों को अपना अपना मार्ग ग्रहण करना और उस पर चलना था। मार्ग-स्थापन का कार्य पहले ही हो चुका था। हिंदी में जो रीति-ग्रंथ लिखे गए, उनमें से अधिकांश में संस्कृत रीति-ग्रंथों की नकल की गई। अधिकांश अलंकार-शास्त्रियों ने रस और ध्वनि संप्रदायों का अनुसरण किया, पर आचार्य केशवदास अलंकार संप्रदाय के अनुयायी थे। रसों में शृंगार रस को ही प्रधानता मिली। यह तत्कालीन परिस्थिति का

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

परिणाम था। शृंगार के आलंबन नायक-नायिका हुए जिनके अनेक भेद-विभेद किए गए। उद्दीपन के लिये षड्ऋतु-वर्णन आदि की प्रथा चली। अतिशयोक्ति का आश्रय भी बहुत अधिक लिया जाने लगा। हिंदी के रीतिकारों की ये प्रधान विशेषताएँ हैं। परंतु इस काल के रीतिकारों में अनेक लोग सच्चा कवि-हृदय रखते थे, अतः उनके उद्गारों में हार्दिक अनुभूति की मर्मस्पर्शिता मिलती है जो केवल रीति की लीक पीटनेवालों में नहीं मिल सकती। ऐसे कवियों की सौंदर्यसृष्टि विशेष प्रशंसनीय हुई है।

हिंदी की आचार्य-परंपरा जब से रीति की ओर झुकी तब से कविता बहुत कुछ रीति-सापेक्ष हो गई और उसके समझने-समझानेवाले भी रीति-ग्रंथों में विशेषज्ञ होने लगे। कविता की उत्तमता की कसौटी बदल गई। जिसमें अलंकारों का समावेश न हो वह कविता ही न रही। आचार्य केशवदास की रामचंद्रचंद्रिका इसी फेर में पड़कर फुटकर छंदों का संग्रह हो गई, जिसमें कहीं रामचंद्र अपनी माता कौशल्या को वैधव्य संबंधी उपदेश देते हैं, कहीं पंचवटी की तुलना धूर्जटि से करते हैं और कहीं बेर-वृक्ष को प्रलयबेला के द्वादशादित्य बतलाते हैं। प्रकृति के रम्य रूपों में कोई आकर्षण नहीं रह गया था, वे केवल अलंकार के डब्बे हो गए। चंद्रमा की सुषमा काव्य के भीतर ही रह गई। बिहारी ने अतिशयोक्ति तथा वस्तुव्यंजना के सामने भावव्यंजना और रसव्यंजना की परवाह नहीं की।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

तिथि जानने के लिये पत्रे की आवश्यकता न रह गई, गुलाब-जल की भरी शीशी जादू के से प्रभाव से ही बीच में खाली हो गई। अनुप्रास तथा शब्दाडंबर की अतिशयता के लिये पद्माकर का नाम ले लेना पर्याप्त है। काव्यरीति के ज्ञाता ही कविता समझ सकते थे; क्योंकि "नीर भरी गगरी ढरकावे" का अर्थ समझने के लिये नायिकाभेद के तथा ध्वनि व्यंजना के विशेषज्ञ की आवश्यकता स्पष्ट है। इस प्रकार काव्यधारा का स्वच्छंद प्रवाह रुककर रीति की नालियों से बहने लगा। उस समय रीति-ग्रंथों को इतना महत्त्व दिया जाता था कि कवि कहलाने के लिये उसी परिपाटी पर ग्रंथ-रचना करना प्रायः अनिवार्य था। महाकवि भूषण का उदाहरण प्रत्यक्ष है। जिस वीर कवि को जातीय उत्थान तथा वीरगुणगान की सच्ची लगन थी, उसे भी सामयिक प्रभाव में पड़कर, वीर-रस-समन्वित ही सही, रीति-ग्रंथ लिखना ही पड़ा।

केशवदास

यद्यपि समय विभाग के अनुसार केशवदास भक्ति काल में पड़ते हैं और यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास आदि के समकालीन होने तथा रामचंद्र चंद्रिका आदि ग्रंथ लिखने के कारण ये कोरे रीति-वादी नहीं कहे जा सकते, परंतु उन पर पिछले काल के संस्कृत साहित्य का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि अपने काल की हिंदी काव्यधारा से पृथक् होकर वे चमत्कारवादी हो गए और हिंदी में रीति-ग्रंथों की परंपरा के आदि आचार्य कहलाए। केशवदास ओड़छे के राजा इंद्रजीतसिंह के आश्रित

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

दरबारी कवि थे। संस्कृत-साहित्य-मर्मज्ञ पंडित-परंपरा में उत्पन्न होने के कारण इनकी प्रवृत्ति रीति-ग्रंथों की ओर हुई थी। ये दंडी और रुय्यक आदि अलंकार संप्रदाय के उन आचार्यों के मतानुयायी थे जो अलंकारों को ही काव्य की आत्मा स्वीकार करते थे। केशवदास की रचनाओं पर इस संप्रदाय की गहरी छाप देख पड़ती है। रस परिपाक की ओर इनका ध्यान बहुत कम रहता है, कहीं-कहीं अलंकारों के पीछे पड़कर ये इतनी जटिल और निरर्थक पदरचना करते हैं कि सहृदयों को ऊब जाना पड़ता है। इनकी कृतियों के क्लिष्ट होने का कारण इनका काव्य में वास्तविक ध्येय को न समझना ही है। हाँ, जहाँ कहीं हृदय की प्रेरणा से रचना की गई है, वहाँ न तो क्लिष्टता हैं और न बाह्य चमत्कार। संस्कृत से पूर्ण परिचित होने के कारण इनकी भाषा संस्कृतमिश्रित और साहित्यिक है। राज-दरबार में रहने के कारण इनमें वाग्वैदग्ध्य बहुत अधिक था, इसलिये इनके कथोपकथन अच्छे हुए हैं। वैभव और तेज-प्रताप का वर्णन करने में इन्हें अद्वितीय सफलता मिली है। इनकी कृतियों में कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रचंद्रिका आदि मुख्य हैं। यद्यपि केशव के पहले भी कृपाराम, गोप, मोहनलाल आदि ने रीति-साहित्य के निर्माण का प्रारम्भ किया था, पर उनकी रचनाएँ केशवदास के सर्वतोमुख प्रयास के सामने एकांगी हो गई हैं। रीतिकाल के इन प्रथम आचार्य केशवदास का स्थान हिंदी में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

oal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

इनमें चिंतामणि, भूषण, मतिराम तथा जटाशंकर थे। कुछ लोगों की सम्मति में वे सब भाई नहीं थे, और विभिन्न कालों के कविताकार थे; परंतु जनश्रुति के आधार पर शिवसिंह सेंगर आदि ने इन्हें सगे भाई स्वीकार किया है। वास्तव में ये तिकवाँपुर (कानपुर) के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और समकालीन कवि तथा सगे भाई थे।

त्रिपाठी-बंधु

चिंतामणि सबसे बड़े थे। इन्होंने काव्यविवेक, कविकुल-कल्पतरु, काव्यप्रकाश तथा रामायण आदि ग्रंथ बनाए। नागपुर के तत्कालीन नृपति मकरंदशाह के दरबार में रहकर इन्होंने छंद विचार ग्रंथ की रचना की और उसे उन्हें ही समर्पित किया। चिंतामणि की रीति-रचना के संबंध में सबसे महत्त्व की बात यह है कि महाकवि आचार्य केशवदास ने हिंदी में जिस अलंकार-संप्रदाय का सृजन किया था, उसे छोड़कर इन्होंने सुंदर रसपूर्ण रचना को जिसमें अलंकारों को उपयुक्त स्थान दिया गया। इस प्रकार वे हिंदी के दूसरे प्रधान रीति-संप्रदाय के प्रायः सर्वप्रथम कवि ठहरते हैं। भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से वे प्रशंसनीय कहे जा सकते हैं। तत्कालीन मुगल सम्राट् शाहजहाँ ने इन्हें पुरस्कृत करके इनकी योग्यता तथा अपनी गुणग्राहिता का परिचय दिया था। इनके दूसरे भाई भूषण के संबंध में हम अन्यत्र लिख चुके हैं।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मतिराम

हिंदी के रससिद्ध सच्चे कवियों में मतिराम अपनी कविता के कारण प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता इनका भाषा-सौष्ठव है। मतिराम की सी प्रसाद-गुण-संपन्न सरल कोमल ब्रजभाषा बहुत कम कवियों ने लिखी होगी।

इनकी पुस्तकों में रसराज और ललितललाम विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त छंदसार, साहित्यसार और लक्षण-शृंगार नामक इनकी अन्य कृतियाँ भी हैं। इनका बनाया, मतिराम-सतसई नामक शृंगाररस-विशिष्ट सात सौ दोहों का संग्रह भी कुछ समय पहले मिला है। यद्यपि इनकी सतसई में बिहारी-सतसई की सी अलंकार-योजना नहीं है और यद्यपि उसकी प्रसिद्धि भी अधिक नहीं है. पर भाषा तथा भावों के सुंदर स्वाभाविक प्रवाह की दृष्टि से वह बिहारी-सतसई से कम नहीं है। बिहारी ने पेचीले मजमून बाँधकर और अतिशयोक्ति आदि हलके अलंकारों से लादकर कविता-कामिनी की निसर्ग-सिद्ध श्री बहुत कुछ कम कर दी है। उसके अनुरागी चाहे उन अलंकारों पर ही मुग्ध बने रहें, पर जहाँ हार्दिक अनुभूतियों के खोजी रसिक समीक्षा करेंगे वहाँ बिहारी के अनेक दोहों को निम्न स्थान ही मिल सकेगा। मतिराम में भावपक्ष का बहुत सुंदर विकास देख पड़ता है।

उनका रसराज और ललितललाम रीति कविता के विद्यार्थियों के लिये सरलतम और सर्वोपयुक्त ग्रंथ हैं। मतिराम को

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वूँदी के महाराज भावसिंह के यहाँ आश्रय मिला था अतः उनकी स्तुति में इन्होंने अनेक छंद कहे हैं, जिनमें कुछ वीररस के हैं।

रीतिकाल के कवियों में प्रसिद्धि की दृष्टि से बिहारी अन्यतम हैं। कुछ साहित्य-समीक्षक कवियों के उत्कर्षापकर्ष का निर्णय उनकी कृतियों की प्रसिद्धि तथा प्रचार की दृष्टि से करते हैं, पर ऐसा करने में भ्रांति की संभावना रहती है। जनता का रुचिनिर्माण करने में क्षणिक परिस्थितियाँ बहुत कुछ काम करती हैं, और उसकी साहित्य-समीक्षा संवंधी कसौटी कभी कभी बिलकुल अनुचित और अशुद्ध भी होती है। प्रसिद्धि तो बहुत कुछ संयोग से भी मिल सकती है। यह सब कहने का हमारा आशय यह नहीं है कि कविवर बिहारी की ख्याति में उनकी कविता की वास्तविक सुंदरता और उत्कृष्टता सहायक नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि इनकी अत्यधिक प्रसिद्धि का कारण साहित्य-संवंधी तत्कालीन अनोखी विचार-परंपरा भी है। बिहारी उस श्रेणी के समीक्षकों में सबसे अधिक प्रिय हैं जो अलग अलग दोहों की कारीगरी पर मुग्ध होते और बात की करामात पसंद करते हैं। सौंदर्य और प्रेम के सुंदरतम चित्र बिहारी ने खींचे हैं पर अलंकरण की ओर उनकी प्रवृत्ति सबसे अधिक थी। उनकी कविता आवश्यकता से अधिक नपी-तुली हो जाने के कारण सर्वत्र स्वाभाविकता-समन्वित नहीं है। बिहारी ने घाट बाट देखने में जितना परिश्रम उठाया होगा, उतना वे यदि हृदय की टोह में करते तो हिंदी कविता उन्हें पाकर

बिहारी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

अधिक सौभाग्यशालिनी होती। यह सब होते हुए भी उनकी सतसई हिंदी की अमर कृति कहलायगी और श्रेणी-विशेष के साहित्य-समीक्षकों तथा काव्य-प्रेमियों के लिये तो वह सर्वश्रेष्ठ रचना है ही। दोहे जैसे छोटे छंद में इतने अलंकारों की सफल योजना करने में बिहारी की टक्कर का कदाचित् ही कोई कवि हिंदी में मिले।

देव

ये इटावे के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इटावे के आसपास सनाढ्यों की वस्ती होने के कारण उनके कान्यकुब्ज होने में संदेह हो सकता है; पर देव के वंशज अपने को कान्यकुब्ज दुसरिहा (द्योसरिया-देव) ब्राह्मण बतलाते हैं। रीति-काल के ग्रंथकारों में सबसे प्रचुर परिमाण में साहित्य का निर्माण करनेवाले देव ही थे; क्योंकि इनके लिखे ५२ या ७२ ग्रंथों में से २६ का पता लग चुका है जिनकी छंद-संख्या कई सहस्र होगी।

बाल्यावस्था से ही इन्होंने जो काव्य-चमत्कार दिखलाया, उससे उनका नैसर्गिक प्रतिभा से समन्वित होना सिद्ध होता है। इस प्रतिभा का उपयोग उन्होंने आश्रयदाता धनियों की मिथ्या प्रशंसाएँ न कर सत्कविता के क्षेत्र में किया था। देव का सम्मान तत्कालीन किसी नृपति ने नहीं किया। इसका कारण चाहे जो हो, पर परिणाम अच्छा ही हुआ। उत्कृष्ट काव्य की सृष्टि के लिये बंधनमुक्त होकर विचरण करना आवश्यक होता है, उपकार या प्रसिद्धि के बोझ से दब जाने से कविता का ह्रास

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

अवश्यंभावी है। जनसाधारण ने उनकी कविता का आदर उस समय नहीं किया, इसका कारण उसकी विपथ-गामी रुचि ही कही जायगी। उनके ग्रंथों की टीकाएँ भी बिहारी-सतसई की भाँति नहीं निकलीं। राजदरबार में अत्यधिक सम्मानित होने के कारण बिहारी-सतसई के टीकाकारों को पुरस्कृत होने की आशा रहती थी। देव को वह सुविधा नहीं मिल सकी।

देव का काव्यक्षेत्र बड़ा व्यापक और विस्तृत था। रीति काल के कवियों में इतनी व्यापकता और कहीं नहीं देख पड़ती। देव की सौंदर्य-विवृति सत्य अतः मर्मस्पर्शिनी है परंतु देव के गायन का मुख्य विषय प्रेम है। उनका प्रेम यद्यपि लौकिक ही कहा जायगा परंतु उनकी तन्मयता के कारण उसमें उनके अंतर तम की पुकार सुन पड़ती है। यही पुकार साहित्य की उत्कृष्टता की सूचिका है। देव की प्रारंभिक रचनाओं में यौवन का उन्माद है, उनमें शृंगारिकता कूट कूटकर भरी है, पर प्रौढ़ावस्था में पहुँचकर उनकी रचनाएँ बहुत कुछ संयत भी हुईं। उनकी दर्शनपच्चीसियों में अधिकतर पूत भावनाएँ सन्निविष्ट हैं। यह सब कहने का आशय इतना ही है कि देव की रचनाओं में जो क्रमिक विकास मिलता है, वह किसी सच्चे कवि के लिए परम आवश्यक है। रीति-काल के अन्य किसी कवि की कृतियों में अंतर की प्रेरणा से घटित क्रमिक परिवर्तन का इतना स्पष्ट पता नहीं लगता।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

ह्योंगा, प्रतापगढ़ (अवध) के रहनेवाले कायस्थ कवि भिखारीदास की रचनाओं में काव्यांगों का विवेचन अच्छे विस्तार से किया गया है। उनका काव्य-निर्णय ग्रंथ अब भी रीति के विद्यार्थियों का प्रिय ग्रंथ है है। इसके अतिरिक्त उनकी रची छंदार्णव-पिंगल, रससारांश, शृंगारनिर्णय आदि अन्य पुस्तकें भी हैं। दासजी के आश्रयदाता प्रतापगढ़ के अधिपति पृथ्वीजीतसिंह के भाई हिंदूपतिसिंह थे।

भिखारीदास

दासजी के आचार्यत्व की बड़ी प्रशंसा की जाती है और रीति से सब अंगों का विवेचन करने के कारण उनकी कृतियाँ बड़े आदर से देखी जाती हैं।

कविता की दृष्टि से दासजी की रचनाएँ बहुत ऊँची नहीं उठतीं। रीति काल के पूर्ववर्ती कवियों के भावों को लेकर स्वतंत्र विषय खड़ा करने में यद्यपि वे बड़े पटु थे, पर भावों के निर्वाह की मौलिक शक्ति न होने के कारण उन्हें सफलता कम मिली है। अवध में रहकर शुद्ध चलती व्रजभाषा लिख सकना तो बहुत कठिन है; पर दासजी की भाषा सामान्यतः शुद्ध और साहित्यिक है। इससे उनके व्रजभाषा के विस्तृत अध्ययन का पता चलता है।

समीक्षा बुद्धि के अभाव के कारण रीति की लीक पर चलने-वाले अनेक कवियों से भिखारीदास का स्थान बहुत ऊँचा है; पर कवियों की बहुत ऊँची पंक्ति में उन्हें कभी स्थान नहीं दिया गया।

oal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

रीति काल के अंतिम चरण के सबसे प्रसिद्ध कवि पद्माकर हैं। ये तैलंग ब्राह्मण मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे। पिता की प्रसिद्धि के कारण अनेक राजदरबारों में इनका सम्मान हुआ था। अवध के तत्कालीन सेनाध्यक्ष हिम्मतबहादुर की स्तुति में इन्होंने हिम्मतबहादुर विरदावली नामक पुस्तक लिखी। इनके मुख्य आश्रयदाता जयपुराधीश जगतसिंह थे जिनको इन्होंने अपना जगद्विनोद ग्रंथ समर्पित किया था। इनका अलंकार-ग्रंथ पद्माभरण भी जयपुर में ही लिखा गया था। प्रबोधपचासा और गंगालहरी इनकी अंतिम रचनाएँ थीं। मृत्यु के कुछ काल पहले से ये कानपुर में गंगातट पर निवास करने लगे थे।

पद्माकर

पद्माकर की शृंगाररस की कविताएँ इतनी प्रसिद्ध हुईं कि इनके नाम पर कितने ही कविनामधारियों ने अपनी कुत्सित वासनाओं से सने उद्गारों को मनमाने ढंग से फैलाया। आज भी पद्माकर के नाम की ओट लेकर बहुत सी अश्लील रचनाएँ देहातों की कविमंडली में सुनी सुनाई जाती हैं। पद्माकर की कृतियों में यदि थोड़ा अश्लीलत्व है तो उनके अनुकरणकारियों में उसका दसगुना।

पद्माकर की अनुप्रासप्रियता भी बहुत प्रसिद्ध है। जहाँ अनुप्रासों की ओर अधिक ध्यान दिया जायगा वहाँ भावों का नैसर्गिक प्रवाह अवश्य भंग होगा और भाषा में अवश्य तोड़-मरोड़ करनी पड़ेगी। संतोष की बात इतनी ही है कि उनके

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

छंदों में उनकी भावधारा को सरल स्वच्छंद प्रवाह मिला है, जिनमें हावों की सुंदर योजना के बीच में सुंदर चित्र खड़े किए गए हैं। शृंगार की ओर अतिशयता से प्रवृत्त रहने के कारण इनका रामरसायन नामक वाल्मीकि-रामायण का अनुवाद-ग्रंथ अच्छा नहीं बन पड़ा। वह युग प्रबंधकाव्य की पड़ती का था। मुक्तक रचनाओं में पद्माकर ने अच्छा चमत्कार प्रदर्शित किया है। आधुनिक हिंदी के कुछ कवियों तथा समीक्षकों की दृष्टि में पद्माकर रीति काल के सर्वोत्कृष्ट कवि ठहरते हैं। जगद्विनोद और पद्माभरण रीति का अध्ययन करनेवालों के लिये सरल ग्रंथ हैं। इनकी भाषा का प्रवाह बड़ा ही सुदर और चमत्कारयुक्त है।

प्रतापसाहि

चरखारी के महाराज विक्रमसाहि के आश्रय में अनेक सुंदर ग्रंथों की रचना करनेवाले प्रतापसाहि हिंदी के रीति काल के अंतिम आचार्य और कवि हुए। इनके "व्यंग्यार्थ-कौमुदी", "काव्य-विलास" आदि ग्रंथों से इनके पांडित्य तथा कवित्व दोनों का पता चलता है। व्रज की शुद्ध भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। ये पद्माकर की भाँति अनुप्रासप्रिय नहीं थे। व्यंग्यार्थ-कौमुदी में रीति-परंपरा की अत्यंत प्रौढ़ अवस्था के अनुरूप अनेक रूढ़िगत रचनाएँ हैं, फिर भी शुद्ध काव्य की दृष्टि से भी उसमें उत्कृष्ट स्थलों की कमी नहीं है। आचार्यत्व और काव्यत्व का ऐसा सुंदर संयोग बहुत थोड़े कवियों में देख

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पड़ता है। समस्यापूर्ति करने के अभ्यासी कवियों का सा भाव-शैथिल्य प्रतापसाहि में बहुत कम पाया जाता है, जिससे उनके सच्चे कवि-हृदय का पता चलता है। रीति-काल की कविता में प्रतापसाहि के उपरांत कोई बड़ा कवि नहीं हुआ। हाँ, शृंगाररस के फुटकर पद्यों की रचना द्विजदेव आदि कुछ कवियों ने उनके बाद भी सफलतापूर्वक की।

रीति की परिपाटी के वाहर प्रेम-सबंधी सुदर मुक्तक छंदों की रचना करनेवालों में इन तीन कवियों का प्रमुख स्थान है।

घनानंद, बोधा, ठाकुर

रीति के भीतर रहकर बँधे बँधाए विभाव, अनुभाव और संचारियों के संयोग से, और परंपरा-प्रचलित उपमानों की योजना से काव्य का ढाँचा खड़ा करना कवि-कर्म को विशेष ऊँचे नहीं पहुँचाता। प्रकृति के रम्य रूपों को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर उन पर मुग्ध होना एक बात है और नायक नायिका की विहार-स्थली को उद्दीपन के रूप में दिखाना दूसरी बात। एक में निसर्ग-सिद्ध काव्यत्व है, दूसरे में काव्याभास मात्र। उसी भाँति अनेक नायक-नायिकाओं के विभेद दिखाते हुए, हावों आदि को जोड़-जाड़कर खड़ा कर देने में कवि की सहृदयता का वैसा पता नहीं लग सकता जैसा तल्लीनता की अवस्था में प्रेम के मार्मिक उद्गारों और स्त्री-पुरुष के मधुर संबंध के रमणीय प्रसंगों का स्वाभाविक चित्रण करने में। घनानंद, बोधा और ठाकुर (बुंदेलखंडी) तीनों ही प्रेम की उमंग में मस्त सच्चे कवि हुए। यह

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

ठीक है कि प्रेम का लौकिक पक्ष न ग्रहण करने के कारण उनकी कविता ऐकांतिक प्रेम सबंधिनी अतः अलोकोपयोगी हो गई है; परंतु उस काल की बँधी परिपाटी से स्वतंत्र होकर मनोहर रचना करने के कारण ये तीनों ही कवि हिंदी में आदर की दृष्टि से देखे जायँगे। घनानंद की भाषा भी ब्रज की टकसाली भाषा थी। उनकी जैसी भाषा रीति काल के कम कवियों ने व्यवहृत की है।

इस काल के अंतिम समय में यशवंतयशोचंद्रिका और यशवंतचंद्रिका नाम के दो प्रसिद्ध ग्रंथ राजपूताने से प्रकाशित हुए और उनका बहुत कुछ आदर हुआ।

फुटकर कविगण

रीतिकाल में कवियों की ऐसी वाढ़ आई थी कि पिछले पृष्ठों में केवल प्रधान प्रधान धारावाही कवियों का उल्लेख ही हो सका है। जिस देश में, जिस काल में कविकर्म शृंखलित, नियमित और रीतिबद्ध हो जाता है वहाँ उस काल में मध्यम श्रेणी के अलंकारप्रिय कवियों की स्वभावतः अधिक संख्या हुआ करती है। कविता जब प्रतिभा-सापेक्ष न रहकर बहुत कुछ अध्ययन-सापेक्ष हो जाती और बुद्धिवाद की ओर झुकती है तब कवि-गण-पांडित्य प्रदर्शन, को काव्य का मुख्य उद्देश्य समझने लगते हैं। कविता अपना वास्तविक सौंदर्य खो देती और कृत्रिम बन जाती है। अँगरेजी साहित्य के इतिहास में पोप और ड्राइडेन की कविता बहुत कुछ ऐसी ही है। हिंदी में

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

श्रीपति; कुलपति, सुखदेव मिश्र और महाराज जसवंतसिंह कवि नहीं कहे जा सकते, अलंकार-ग्रंथ-निर्माता ही कहे जायँगे। साहित्यिक विश्लेषण के अनुसार इन्हें साहित्य-समालोचकों की श्रेणी में स्थान मिलना चाहिए, कवियों की श्रेणी में नहीं। कविताकारों में उपर्युक्त नामों के अतिरिक्त वेणीप्रवीण, द्विजदेव आदि के नाम भी किसी प्रकार आ जायँगे। तत्कालीन मुसलमान कवियों में आलमशेख का जोड़ा प्रसिद्ध है। रसलीन और अलीमुहिब खाँ की रचनाएँ भी थोड़ा-बहुत मूल्य अवश्य रखती हैं।

यद्यपि रीति काल में हिंदी कविता की अंगपुष्टि बहुलता से हुई, पर साथ ही कलापक्ष की ओर जितना अधिक ध्यान दिया गया उतना भावपक्ष की ओर नहीं दिया गया। आचार्यत्व तथा कवितत्त्व के मिश्रण ने भी ऐसी खिचड़ी पकाई जो स्वादिष्ट होने पर भी हितकर न हुई। आचार्यत्व में संस्कृत की बहुत कुछ नकल की गई और वह नकल भी एकांगी हुई। सिद्धांतों को लेकर उन पर विवेचनापूर्ण ग्रंथों के निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया गया, केवल पुरानी लकीर को ही पीटते रहने की रुचि ने साहित्य के इस अंग की यथेष्ट पुष्टि न होने दी।

——

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

नवाँ अध्याय

आधुनिक काल

पद्य

कविता का जो प्रवाह केशवदास और चिंतामणि आदि ने बहाया, वह देव और बिहारी के समय में पूर्णता को पहुँचकर क्षीण होने लगा; तथा पद्माकर और प्रतापसाहि तक पहुँचते पहुँचते उसकी गति प्रायः मंद पड़ गई। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि संपूर्ण रीति-काल में अधिकांश निम्नकोटि का साहित्य तैयार होता रहा, जिसका कारण तत्कालीन जनता तथा रईसों की अभिरुचि थी। अधिकांश कवि अलंकारों के पीछे पागल होकर घूम रहे थे और रीति के संकीर्ण घेरे के बाहर निकलने में असमर्थ थे। जिस देश की जिस काल में ऐसी साहित्यिक प्रगति होती है, वह देश उस काल में सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक आदि सभी दृष्टियों से पतित हो जाता है और कुछ समय के उपरांत उच्च लक्ष्य के संपन्न साहित्यकारों के प्रसाद से उसकी दशा का सुधार और संस्कार हुआ करता है।

रीति-धारा का अंत

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

हिंदी साहित्य के आरंभकाल में वीर कविता का प्रादुर्भाव जिस प्रकार देश की भीतरी राजनीतिक अव्यवस्था और बाह्य विदेशी आक्रमणों के कारण हुआ, मध्य-कालीन भक्तिकाव्य के मूल में अपने उद्धार की बेचैनी दिखाई पड़ती है और जिस प्रकार शृंगार-काव्य की प्रत्येक पंक्ति में देश की तत्कालीन समृद्धि और विलास वैभव से उत्पन्न आत्मविस्मरण का अद्भुत उदाहरण देख पाते हैं, ठीक उसी प्रकार बीसवीं शती के आरंभ में ही हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का उदय भी अत्यंत स्वाभाविक कारणों से और अत्यंत स्वाभाविक परिस्थिति में हुआ।

आधुनिक काल का उदय

यद्यपि आधुनिक काल हिंदी साहित्य के सर्वतोमुख विकास का युग है, किंतु उसकी सबसे बड़ी विशेषता है गद्य साहित्य का विकास। इसके पूर्व उसमें प्रधानता पद्य ही की थी, गद्य साहित्य तो नगण्य था। आधुनिक काल गद्य की उन्नति पूर्ण अनुकूल रहा और उसमें गद्य की धारा अनेक शाखाओं में होकर पूर्ण वेग से बही। गद्य की भाषा तो निर्विवाद रूप से खड़ी बोली स्वीकृत हुई पर पद्य की भाषा परंपरानुसार ब्रज-भाषा ही रही। नायिका भेद और अलंकार ही कविता का विषय नहीं रहा, समय के अनुसार उसमें वर्तमान असंतोष, समाज के उद्धार तथा देशप्रेम, भाषाप्रेम आदि की आवाज ऊँची की गई। नवीन विषयों के अनुसार ब्रजभाषा को भी

आधुनिक काल की विशेषताएँ

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

अपनी गति बदलनी पड़ी। कविता में भी व्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली लेने लगी। वह मँज-सँवरकर संस्कृत और शक्ति-संपन्न बनने लगी।

हिंदी की ह्रासकारिणी शृंगारिक कविता के प्रतिकूल आंदोलन का श्रीगणेश उस दिन से समझा जाना चाहिए जिस दिन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने "भारत-दुर्दशा" नाटक के प्रारंभ में समस्त देशवासियों को संबोधित करके देश की गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आँसू वहाने को आमंत्रित किया था।

भारतेंदु हरिश्चंद्र

राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि के उद्योग से सामाजिक, सांप्रदायिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में जो हलचल मची, उसके परिणाम-स्वरूप सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वात हुई जनता में शिक्षा की अभिरुचि। संस्कृत तथा उर्दू-फारसी की ओर प्रवृत्त करनेवाली प्रेरणा स्वामी दयानंद से अधिक मिली और हिंदी अँगरेजी की पढ़ाई तो कुछ पहले से ही प्रारंभ हो चुकी थी। पड़ोस में होने के कारण उन्नतिशील बँगला भाषा की ओर भी कुछ लोगों का ध्यान लगभग उसी समय से खिंचा। इस प्रबल शिक्षाप्रचार का जो प्रभाव राजनीतिक अभिज्ञता, सामाजिक जागर्ति और धार्मिक चेतना आदि के रूप में पड़ा, वह तो पड़ा ही, हिंदी साहित्य-क्षेत्र भी उसके शुभ-परिणाम-स्वरूप अनंत उर्वर हो गया। सारा साहित्य नवीन प्रकाश से परिपूर्ण होकर ज्योति

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

की शत सहस्र किरणें विकीर्ण करने लगा। हमारी कविता भी सजग हो उठी। वह अपनी स्थविरता का परित्याग कर आगे बढ़ी और सामयिक प्रवृत्तियों के अनुकूल रूप-रंग बदल-कर शिक्षित जनता के साहचर्य में आ गई। स्वयं देवी सरस्वती ने अपने अलौकिक कर-स्पर्श से कविता-कामिनी को सुवर्णमयी बना दिया। उस काल की हिंदी कविता मुख्यतः देशप्रेम और जातीयता की भावना को लेकर उदित हुई थी, यद्यपि अन्य प्रकार की रचनाएँ भी थोड़ी-बहुत होती रहती थीं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता हिंदी में नवीन प्रगति की पताका लेकर आई थी। उस समय के अन्य कवियों ने सच्चे सैनिकों की भाँति अपने सेनापति का अनुगमन किया था। उन सभी कवियों पर भारतेंदु का प्रभाव स्पष्टतः देख पड़ता है। यहाँ हम हरिश्चंद्र की फुटकर रचनाओं की बात नहीं कहते जो चली आई हुई शृंगारिक कविता की श्रेणी की ही मानी जायँगी। उनकी जो रचनाएँ जातीय भावनाओं से प्रेरित होकर लिखी गईं, जिनमें देश की अवस्था और समाज की अवस्था आदि का वर्णन है, यहाँ उसी का विवेचन अभीष्ट है। हिंदी कविता के उस परिवर्तनकाल में हरिश्चंद्र जैसे महान् व्यक्ति को देखकर हम चकित हुए बिना नहीं रह सकते। यह ठीक है कि शुद्ध काव्य-समीक्षा की दृष्टि से उनकी रचनाएँ सूर और तुलसी की कोटि को नहीं पहुँचतीं, और यह भी ठीक है कि कबीर, जायसी आदि कवियों की वाणी की समता भी वे नहीं कर सकते; पर

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

इससे उनका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं होता। रीति-कविता की शताब्दियों से चली आती हुई गंदी गली से निकल शुद्ध वायु में विचरण करने का श्रेय हरिश्चंद्र को पूरा पूरा प्राप्त है। वे और उनके साथी बड़े ही सहृदय व्यक्ति थे जिन्हें अपनी धुन में मस्त रहना आता था। मौलिक साहित्यकारों में हरिश्चंद्र का स्थान हिंदी में बराबर ऊँचा रहेगा। वे प्रेमी जीव थे, पर उनका देश-प्रेम भी अतिशय प्रबल था। मुक्तक रचना में जातीयता के भावों को सफलतापूर्वक भरकर उन्होंने हिंदी कविता का अपार उपकार किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र का वास्तविक महत्त्व परिवतन उपस्थित करने में और साहित्य को शुद्ध मार्ग से ले चलने में है, उच्च कोटि की काव्य-रचना करने में उतना नहीं है। परिवर्तन उपस्थित करने का महत्त्व कितना अधिक होता है और इस दृष्टि से हरिश्चंद्र का स्थान हिंदी-साहित्य में कितना ऊँचा है इसका अनुमान हम तभी कर सकेंगे जब उनके पीछे की साहित्यिक प्रगति में हम उनके प्रभाव का साक्षात्कार करेंगे और उनके समसामयिक सभी कवियों में उनकी अमिट छाप देखेंगे। श्रृंगारिक कविता की प्रबल वेग से बहती हुई जिस धारा का अवरोध करने में हिंदी के प्रसिद्ध वीर कवि भूषण समर्थ नहीं हुए थे, उसमें भारतेंदु पूर्णतः सफल हुए। उससे भी उनके उच्च पद का पता लग सकता है।

हरिश्चंद्र के उपरांत हिंदी के कवियों की प्रवृत्ति अँगरेजी की लीरिक कविता के अनुकरण में छोटे छोटे गेय पद बनाने और उन्हें पत्रों में प्रकाशित करने की ओर हुई। लीरिक कविता

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

में आत्माभिव्यंजन की प्रधानता रहनी चाहिए; पर हिंदी के तत्कालीन कविताकारों में यह बात कम देखी जाती है। न तो विषयों के उपयुक्त चुनाव की दृष्टि से और न तन्मयता की दृष्टि से उनकी रचनाएँ श्रेष्ठ लीरिक कविताओं में गिनी जा सकती हैं। यह स्पष्ट जान पड़ता है कि शिक्षा आदि विषयों पर कविता लिखनेवाले व्यक्ति में काव्य की सच्ची प्रेरणा कम होती है, निबंधरचना का भाव अधिक होता है। हिंदी के उस काल के कवियों ने ऐसे ही विषयों पर कविता की, जिससे जन-समाज में जागर्ति तो फैली, पर कविता का विशेष कल्याण न हो सका। काव्य के लिये निबंधों की सी बुद्धिगम्य विचार-प्रणाली की आवश्यकता नहीं होती, भावों को उच्छ्वसित करना आवश्यक होता है। अनेक प्रमाणों को एकत्र कर पद्य का ढाँचा खड़ा करना कविता नहीं हैं, और चाहे जो कुछ हो। उस काल की हिंदी कविता में समाजसुधार और जातीयता का इतना दृढ़ प्रभाव पड़ चुका था कि उनके प्रभाव से मुक्त होकर रचना करना किसी कवि के लिये संभव नहीं था।

हरिश्चंद्र के समकालीन व्यक्ति

अब तक व्रजभाषा ही कविता का माध्यम थी और कवित्त सवैया आदि छंदों का ही अधिक प्रयोग होता था। पर इस समय के लगभग भाषा के माध्यम में परिवर्तन किया गया। व्रजभाषा के बदले खड़ी बोली का प्रयोग होने लगा। इस समय तक खड़ी बोली हिंदी गद्य की प्रचलित भाषा हो चुकी थी, पर

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

इससे उनका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं होता। रीति-कविता की शताब्दियों से चली आती हुई गंदी गली से निकल शुद्ध वायु में विचरण करने का श्रेय हरिश्चंद्र को पूरा पूरा प्राप्त है। वे और उनके साथी बड़े ही सहृदय व्यक्ति थे जिन्हें अपनी धुन में मस्त रहना आता था। मौलिक साहित्यकारों में हरिश्चंद्र का स्थान हिंदी में बराबर ऊँचा रहेगा। वे प्रेमी जीव थे, पर उनका देश-प्रेम भी अतिशय प्रबल था। मुक्तक रचना में जातीयता के भावों को सफलतापूर्वक भरकर उन्होंने हिंदी कविता का अपार उपकार किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र का वास्तविक महत्त्व परिवर्तन उपस्थित करने में और साहित्य को शुद्ध मार्ग से ले चलने में है, उच्च कोटि की काव्य-रचना करने में उतना नहीं है। परिवर्तन उपस्थित करने का महत्त्व कितना अधिक होता है और इस दृष्टि से हरिश्चंद्र का स्थान हिंदी-साहित्य में कितना ऊँचा है इसका अनुमान हम तभी कर सकेंगे जब उनके पीछे की साहित्यिक प्रगति में हम उनके प्रभाव का साक्षात्कार करेंगे और उनके समसामयिक सभी कवियों में उनकी अमिट छाप देखेंगे। शृंगारिक कविता की प्रबल वेग से बहती हुई जिस धारा का अवरोध करने में हिंदी के प्रसिद्ध वीर कवि भूषण समर्थ नहीं हुए थे, उसमें भारतेंदु पूर्णतः सफल हुए। उससे भी उनके उच्च पद का पता लग सकता है।

हरिश्चंद्र के उपरांत हिंदी के कवियों की प्रवृत्ति अँगरेजी की लीरिक कविता के अनुकरण में छोटे छोटे गेय पद बनाने और उन्हें पत्रों में प्रकाशित करने की ओर हुई। लीरिक कविता

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

में आत्माभिव्यंजन की प्रधानता रहनी चाहिए; पर हिंदी के तत्कालीन कविताकारों में यह बात कम देखी जाती है। न तो विषयों के उपयुक्त चुनाव की दृष्टि से और न तन्मयता की दृष्टि से उनकी रचनाएँ श्रेष्ठ लीरिक कविताओं में गिनी जा सकती हैं। यह स्पष्ट जान पड़ता है कि शिक्षा आदि विषयों पर कविता लिखनेवाले व्यक्ति में काव्य की सच्ची प्रेरणा कम होती है, निबंधरचना का भाव अधिक होता है। हिंदी के उस काल के कवियों ने ऐसे ही विषयों पर कविता की, जिससे जन-समाज में जागर्ति तो फैली, पर कविता का विशेष कल्याण न हो सका। काव्य के लिये निबंधों की सी बुद्धिगम्य विचार-प्रणाली की आवश्यकता नहीं होती, भावों को उच्छ्वसित करना आवश्यक होता है। अनेक प्रमाणों को एकत्र कर पद्य का ढाँचा खड़ा करना कविता नहीं है, और चाहे जो कुछ हो। उस काल की हिंदी कविता में समाजसुधार और जातीयता का इतना दृढ़ प्रभाव पड़ चुका था कि उनके प्रभाव से मुक्त होकर रचना करना किसी कवि के लिये संभव नहीं था।

हरिश्चंद्र के समकालीन व्यक्ति

अब तक व्रजभाषा ही कविता का माध्यम थी और कवित्त सवैया आदि छंदों का ही अधिक प्रयोग होता था। पर इस समय के लगभग भाषा के माध्यम में परिवर्तन किया गया। व्रजभाषा के बदले खड़ी बोली का प्रयोग होने लगा। इस समय तक खड़ी बोली हिंदी गद्य की प्रचलित भाषा हो चुकी थी, पर

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पद्य में अपनी कोमलता और सौंदर्य के कारण ब्रजभाषा ही व्यवहार में लाई जा रही थी। खड़ी बोली के पक्षपातियों का सबसे बड़ा तर्क यही था कि बोलचाल की जो भाषा हो उससे विभिन्न भाषा का प्रयोग कविता में न होना चाहिए। पर पढ़ी लिखी जनता की प्रवृत्ति खड़ी बोली की ओर अधिक हो रही थी, छंदों में भी अनेकरूपता आने लगी थी। नए नए छंदों का इस काल में अच्छा आविष्कार हुआ। परंतु इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण बात है व्याकरण की प्रतिष्ठा। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समसामयिक कवियों को जो मार्ग प्रशस्त करना था, उसमें व्याकरण के जटिल नियमों को स्थान नहीं दिया जा सकता था। हिंदी के उस क्रांति-युग में व्याकरण की व्यवस्था संभव भी नहीं थी। उस समय तो कविता को रीति की संकीर्णता से निकालना था, उसे खुली हवा में लाकर स्वस्थ करना था, पर कुछ काल के उपरांत जब हिंदी गद्य कुछ उन्नत हुआ, तब भाषा संस्कार आदि की ओर भी ध्यान दिया गया। यह सब होते हुए भी हमको इतना तो अवश्य स्वीकृत करना पड़ेगा कि उस काल की खड़ी बोली बड़ी कर्कशता लेकर आई थी, उसमें काव्योपयुक्त कोमलता नहीं थी। परंतु कर्कशता में कोमलता का समावेश करने और व्याकरण के नियमों से भाषा को शृंखलित करने की चेष्टा उस काल में अवश्य हुई थी।

स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक और पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी खड़ी बोली की कविता के प्रथम लेखक और आचार्य

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

हुए। पाठकजी ने गोल्डस्मिथ की कविता-पुस्तकों का अनुवाद "ऊजड़ गाँव", "एकांतवासी योगी" और "श्रांत पथिक" के नाम से किया और कुछ मौलिक कविताएँ भी कीं। द्विवेदीजी ने मराठी साहित्य की प्रगति से परिचित होकर मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में छोटी छोटी रचनाएँ कीं और अनेक कवियों को प्रोत्साहन दिया। यदि पाठकजी में कवित्व द्विवेदीजी से अधिक है तो द्विवेदीजी में भाषा का मार्जन पाठकजी की अपेक्षा अधिक है। उस समय खड़ी बोली का जो अनिश्चित रूप प्रचलित था उसे सुधारकर काव्योपयुक्त बनाने की चेष्टा करने के कारण द्विवेदीजी का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जायगा। परंतु मराठी कविता की कर्कशता द्विवेदीजी की रचनाओं में भी देख पड़ी। कुछ काल उपरांत द्विवेदीजी ने कुमारसंभव आदि संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद कविता में किए, जो अपने ढंग के अनुपम हुए। पाठकजी ने व्रजभाषा का पल्ला भी पकड़ा और बड़ी ही मधुर कविता का सृजन किया। द्विवेदीजी के अनुयायियों में आगे चलकर अनेक प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमें बाबू मैथिलीशरण गुप्त सबसे अधिक यशस्वी हैं। पाठकजी को प्रकृति की रम्य क्रीड़ा-भूमि काश्मीर में तथा अन्य मनोहर पहाड़ी प्रदेशों में रहने का सुअवसर मिला था, जिसके फल-स्वरूप उनके रसिक हृदय ने प्राकृतिक दृश्यों के साथ आंतरिक अनुराग प्राप्त कर लिया था। इस अनुराग की स्पष्ट झलक उनकी रचनाओं में देख पड़ती है।

पाठकजी और द्विवेदीजी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

उपाध्यायजी और नाथूरामजी

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय और पंडित नाथूराम शंकर शर्मा हिंदी के उन प्रसिद्ध कवियों में हैं जिन्होंने द्विवेदीजी के प्रभाव के बाहर रहकर काव्य-रचना की। अपने प्रारंभिक कविताकाल में उपाध्यायजी ब्रजभाषा में कविता करते थे; पर आगे चलकर उन्होंने संस्कृत पदावली का आश्रय लेकर संस्कृत वृत्तों में प्रियप्रवास की रचना की। प्रियप्रवास में उपाध्यायजी की कवित्वशक्ति बड़ी सुंदर देख पड़ी थी और उसके कुछ स्थलों में काव्यत्व उच्च कोटि का मिलता था, जिसे देखकर उनके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की गई थी, परंतु प्रियप्रवास की रचना के उपरांत उन्हें काव्य में मुहावरों का चमत्कार दिखाने तथा उपदेशों और व्यंग्यों द्वारा समाज-सुधार करने की धुन सवार हुई। कवि न बनकर वे समाज-सुधारक, उपदेशक और मुहावरों के संग्रहकार बन गए। यह ठीक है कि उनकी ढेर की ढेर रचनाओं में कुछ छोटी छोटी कृतियाँ अंतःकरण की अकृत्रिम प्रेरणा से लिखी जाने के कारण अच्छी बन पड़ी हैं, पर अधिकांश कविताएँ बनावटी और परिश्रमपूर्वक गढ़ी हुई जान पड़ती हैं। प्रियप्रवास में भी संस्कृत छंदों का आश्रय लेने के कारण उनको भाषा और उसके व्याकरण की तोड़-मरोड़ करनी पड़ी है। इससे प्रसाद गुण का अभाव हो गया है। पंडित नाथूरामजी शर्मा विलक्षण शब्द-निर्माता और कवि थे। आर्यसमाजी होते हुए भी उनकी सब कविताएँ सांप्रदायिक नहीं हो गई हैं और कुछ में तो उत्तम

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कोटि के कवित्व की झलक मिलती है। शृंगार-रस के पद्माकरी कवियों की भाँति भी इन्होंने कुछ कविताएँ कीं, पर उनके योग्य नहीं कही जा सकतीं।

मैथिलीशरणजी गुप्त

बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त आधुनिक खड़ी बोली के सबसे प्रसिद्ध और प्रतिनिधि कवि हैं। द्विवेदीजी की ही भाँति उनकी भाषा में संस्कृत का पुट रहता है पर "प्रियप्रवास" की भाँति वह अतिशय संस्कृत-गर्भित नहीं होता। उर्दू के बहुत ही थोड़े शब्दों को ग्रहण करने के कारण वे पंडित गयाप्रसाद "सनेही" जी की उर्दू-मिश्रित कविताशैली से भी विभिन्न रूप में हमारे सामने आते हैं। भाषा की दृष्टि से उनका मध्यम मार्ग ही कहा जायगा। उनकी पहली रचना भारतभारती अब भी अनेक देशप्रेमी नवयुवकों का कंठहार हो रही है, और कितने नवसिखुए कवि अब भी उसका अनुकरण करते देखे जाते हैं। पर काव्य की दृष्टि से उसका विशेष महत्त्व नहीं है। काव्य की दृष्टि से उनका जयद्रथवध खंड-काव्य उत्कृष्ट हुआ है। उसमें वीररस का पूर्ण परिपाक और बीच बीच में करुणारस के सुन्दर छींटे देखकर मन रसमग्न हो जाता है। अपनी "हिंदू" शीर्षक कविता-पुस्तक में गुप्तजी उपदेशक बनकर "गीता" का अनुकरण करते देखे जाते हैं। आधुनिक रचनाओं में पंचवटी सर्वश्रेष्ठ है उसमें लक्ष्मण का चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल चित्रित हुआ है और पूरी पुस्तक में सुंदर पद्यों की अनोखी छटा देख पड़ती है। मैथिलीशरण गुप्तजी ने 'साकेत', 'यशोधरा' और

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

'द्वापर' नामक काव्यों की भी रचना की है। साकेत महाकाव्य है। उसमें साकेत (अयोध्या) को केंद्र बनाकर रामकथा का वर्णन किया गया है। कवि राम-लक्ष्मण-सीता के साथ वन नहीं जाता; भरत, शत्रुघ्न, मांडवी, श्रुतिकीर्ति, उर्मिला आदि के साथ अयोध्या का ही वर्णन करना अपना उद्देश्य बनाता है। विशेषतया उर्मिला के चरित्र से कवि अधिक अपनाव दिखलाता है। इस महाकाव्य में स्थल स्थल पर कवि की प्रतिभा खूब चमकी है। यशोधरा में बुद्ध-वैराग्य के बाद यशोधरा का वर्णन है। यह करुण रस का सुन्दर काव्य है, किंतु स्थल स्थल पर व्यर्थ के वाग्विस्तार ने काव्य के प्रभाव को क्षीण कर दिया है। द्वापर नए ढंग का काव्य है जिसमें कृष्ण-कथा से संबंध रखनेवाले पात्र अपने अपने मुँह से एक प्रकार से अपनी अपनी जीवन-कथा कहते हैं। ढंग सर्वथा मौलिक है और गुप्तजी की उपज-बुद्धि को सिद्ध करता है। गुप्तजी का आधुनिक समय का प्रतिनिधि कवि होना इसी बात से सिद्ध होता है कि उनकी छायावाद के ढंग की रचनाएँ भी उस श्रेणी के कवियों की प्रशंसा पा चुकी हैं। गुप्तजी की कविता में कहीं कृत्रिमता नहीं देख पड़ती परंतु इसमें भी संदेह नहीं कि उनका अधिकांश काव्य पद्यमय गद्य है। इन्होंने बँगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के "मेघनादवध", "वीरांगना", "विरहिणी व्रजांगना" तथा नवीनचंद्र सेन के "पलासीर युद्ध" का भी हिंदी में अनुवाद

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

किया है। इन अनुवादों में गुप्तजी को अद्भुत सफलता मिली है। इनसे उनकी विलक्षण क्षमता का पता तो चलता ही है, खड़ी बोली की शब्द-शक्ति भी प्रकट होती है।

सनेहीजी और दीनजी

पंडित गयाप्रसाद शुक्ल सनेही और लाला भगवानदीन ने उर्दू-मिली भाषा में कविता की है। दोनों ही राष्ट्रीयता के भाव को लेकर आए हैं और दोनों की रचनाएँ ओजस्विनी हुई हैं। अंतर इतना ही है कि सनेहीजी ने आधुनिक समाज को अपनी कविता का लक्ष्य बनाया और दीनजी महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि वीर नृपतियों की प्रशस्तियाँ लिखने में लगे रहे। राष्ट्रीय कवियों को साहित्य की क्लिष्ट भाषा लेकर नहीं चलना पड़ता, उन्हें तो जनता की प्रचलित भाषा का आश्रय लेना पड़ता है। इस दृष्टि से सनेहीजी और दीनजी दोनों ने ही भाषा का उपयुक्त चुनाव किया है। दोनों की भाषा सरल बोल चाल की खड़ी बोली है और दोनों ने उर्दू छंदों का भी प्रयोग किया है, पर दोनों में ओज और रसात्मकता पूरी है।

शुक्ल जी

पंडित रामचंद्र शुक्ल की प्रसिद्धि उत्कृष्ट गद्य-लेखक और समालोचक की दृष्टि से है, उनकी कविताएँ उन्हें अधिक सम्मानित नहीं कर सकी हैं। बुद्ध-चरित के अतिरिक्त उनकी अनेक रचनाएँ इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं, संगृहीत नहीं हुई हैं। शुक्लजी हिंदी के विद्वान् और दार्शनिक आलोचक हैं, परंतु उनका प्रकृति-प्रेम भी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

विशेष उल्लेख-योग्य है। वन्य प्रकृति के उजाड़ और सूने स्वरूप के प्रति भी उनका जितना अनुराग है उतना ही बगीचों में खिले हुए गुलाब के फूल के प्रति है। सौंदर्य को बड़े ही व्यापक रूप में देखने की अंतर्दृष्टि हिंदी में शुक्लजी को मिली है। बुद्ध-चरित में बुद्ध के निष्क्रमण के समय सोती हुई राजमहिषी और उसकी सहेलियों की नागरिक छवि जितनी सुंदर अंकित की गई है उतनी ही खेतों, खलिहानों या नदी-पर्वतों के आसपास विचरते हुए कृषकों और कृषक-पत्नियों की छवि। प्राकृतिक वर्णन बुद्ध-चरित के सर्वश्रेष्ठ अंश हैं और उनके वर्णनों में शुक्लजी का सूक्ष्म निरीक्षण प्रतिभासित होता है। 'हृदय के मधुर भार' शीर्षक उनके फुटकर पद्यों में कहीं व्यंग्य और कहीं मीठी चुटकियों के द्वारा मानव-समाज की अज्ञता, दुर्बलता और अहंकारिता का नग्न रूप दिखाया गया है।

राष्ट्रीय कवियों को पूरी सफलता तभी मिल सकती है जब वे राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वयं सम्मिलित हों और उत्साहपूर्वक

राष्ट्रीय कवि

जनता को मुक्ति का पथ दिखलावें। चंद्र, भूषण आदि वीर कवियों ने ऐसा ही किया था। हिंदी के आधुनिक राष्ट्रीय कवियों में पंडित माखन-लाल चतुर्वेदी और पं० बालकृष्ण शर्मा का कार्य इस दृष्टि से विशेष प्रशंसनीय कहा जायगा। पं० माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य-रचना, उर्दू शेरों की भाँति अधिकांश ऊहात्मक होती है और मुक्तक की कोटि में आती है। अपनी राजनीतिक

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

विह्वलता को रहस्यात्मक शैली से व्यक्त कर उन्होंने एक नई चाल की राजनीतिक कविता का सूत्रपात भी किया। इसका रहस्य आधुनिक राजनीति में देखा जा सकता है। चतुर्वेदीजी से अधिक मार्मिक और रसमय कविता पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने की है, जिन्हें लोग 'भारतीय आत्मा' का अनुयायी समझते हैं। इनकी कविता की शब्दावाली में कुछ एकदेशीय ठेठ शब्दों का प्रयोग तो 'भारतीय आत्मा' की शैली से मिलता-जुलता है परंतु इसके अतिरिक्त बालकृष्णजी एक स्वतंत्र और भावना-संवलित कवि हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी और नवीनजी

आधुनिक राष्ट्रीय कवियों में पंडित सोहनलाल द्विवेदी की कविताएँ उल्लेखनीय हैं। इनकी भाषा सरल और बोलचाल की खड़ी बोली है। राष्ट्रीयता की भावना लेकर बालोपयोगी सरल कविताएँ 'झरना' में संगृहीत हैं। भैरवी, पूजागीत, सेवाग्राम आदि में अन्य उच्च कोटि की राष्ट्रीय कविताएँ भाव और भाषा दोनों दृष्टि से सुंदर हैं। उन्होंने इधर 'कुणाल' और 'विषपान' जैसे कई खंडकाव्य भी लिखे हैं जिनसे इनकी प्रसिद्धि हुई है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने हिंदी में "मिलन" "पथिक" तथा "स्वप्न" नामक तीन खंड-काव्यों की रचना की है। उनकी भाषा में संस्कृत का सौंदर्य दर्शनीय है। यद्यपि उनमें भावों की प्रचुरता नहीं है, पर एक ही वस्तु को बड़ी सुंदरता से कई बार दिखाने में उन्हें

त्रिपाठीजी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

बड़ी सफलता मिली है। राष्ट्रीयता की भावना उनकी पुस्तकों में भरी पड़ी है। इसी से राजनीतिक क्षेत्र के बड़े बड़े व्यक्तियों ने उनकी प्रशंसा की है, यद्यपि उनकी राजनीति कहीं कहीं उनकी कविता में बाधक हो गई है।"विधवा का दर्पण" शीर्षक उनकी एक मुक्तक रचना, हिंदी में उनकी अब तक की कृतियों में उच्च स्थान की अधिकारिणी है। त्रिपाठीजी की "अन्वेषण" आदि अन्य छोटी छोटी रचनाएँ भी बड़ी ही सुंदर बन पड़ी हैं।

गोपालशरण सिंह और हितैषीजी

ठाकुर गोपालशरण सिंह चलती भाषा में उत्कृष्ट कविता करते हैं। 'माधवी' में उनकी कुछ उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। वे कोमल भावनाओं के कवि हैं। इनकी रचनाओं में प्रेम की प्रधानता है। वह प्रेम कहीं ईश्वरोन्मुख होता है, कहीं संसार के प्रति और देश के प्रति इनका प्रेम पवित्र है और इनकी शृंगारिक रचनाओं में भी सुरुचि सर्वत्र दिखाई देती है। ये सांसारिक सुख-दुःख से विशेष प्रभावित हुए हैं आपकी अधिकांश रचनाएँ मानव-जीवन से संबंध रखती हैं ।छोटे छोटे गीतों में पीड़ित आत्माओं का करुण स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। पं० जगदंबा-प्रसाद मिश्र "हितैषी" प्रत्येक रस की कविता करते हैं जिसमें विनोद की मात्रा वर्तमान रहती है। आपकी भाषा अत्यंत परि-मार्जित एवं मुहावरेदार होती है और आपके भाव अनूठे तथा उच्च होते हैं। कथन प्रणाली अत्यंत सरल है और अनुप्रास की अपूर्व छटा उसका विशेष गुण है। सवैया छंद लिखने में आप

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

बड़े कुशल हैं। उसमें एक प्रकार की विचित्र नवीनता ला देते हैं।

ब्रजभाषा के आधुनिक कवि

ब्रजभाषा में कविता करनेवालों में हरिश्चंद्र के उपरांत प्रेमघन और श्रीधर पाठक श्रेष्ठ कवि हुए। इनके उपरांत पंडित सत्यनारायण शर्मा कविरत्न और बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" का नाम उल्लेखनीय है। कविरत्नजी ब्रजमंडल के रहनेवाले, ब्रजपति के अनन्य भक्त, बड़े ही रसिक और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी रचनाओं में ब्रज की माधुरी लबालब भरी है। स्वदेशानुराग की सच्ची झलक दिखलानेवाले थोड़े कवियों में इनकी गणना होगी। रत्नाकरजी ब्रजभाषा के आधुनिक सर्वोत्कृष्ट कवि थे।

कविरत्नजी और रत्नाकरजी

इनका "हरिश्चंद्र काव्य" सुंदर हुआ है, पर "गंगावतरण" नामक नवीन रचना में इनकी सच्ची काव्य-प्रतिभा चमक उठी है। इस ग्रंथ में रत्नाकरजी ने प्रकृति के नाना रूपों के साथ अपने हार्दिक भावों का सामंजस्य दिखा दिया है। इनका "उद्धवशतक" काव्य भी बहुत सुंदर हुआ है। रत्नाकरजी की भाषा-शैली पद्माकरी कही जा सकती है और अनुभावों के प्रस्तुत करने में उन्होंने आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों का उपयोग किया है। राय देवीप्रसाद "पूर्ण" ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवियों में थे। वे खड़ी बोली में भी कविता करते थे। ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों में वियोगी हरिजी की भी अच्छी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

प्रसिद्धि है। ये भक्त हैं, दार्शनिक हैं और वीररस की कविता करनेवाले हैं। यद्यपि यह युग व्रजभाषा का नहीं है तथापि उपर्युक्त कवियों की रचनाएँ उत्कृष्ट हुई हैं और पठित जनता में उनका प्रचार भी हुआ है। आधुनिक काल के व्रजभाषा के कवियों में रत्नाकरजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है।

अन्य कविगण

इस युग के अन्य कवियों में पंडित रूपनारायण पांडेय, बाबू सियारामशरण गुप्त, पंडित अनूप शर्मा, पंडित गिरधर शर्मा, पंडित कामताप्रसाद गुरु, पंडित रामचरित उपाध्याय, पंडित लोचनप्रसाद पांडेय, पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी, पंडित श्यामनारायण पांडेय आदि भी उल्लेखयोग्य हैं। रूपनारायणजी की भाषा चलती हुई खड़ी बोली है। उनकी कविता में पूरी रसात्मकता है। हिंदी की लीरिक कविताओं में उनकी 'वन-विहंगम' शीर्षक रचना उत्कृष्ट है। सियारामशरणजी ने सामाजिक कुरीतियों पर इतनी तीव्र व्यंग्यमयी और करुण कविता की है कि चित्त पर स्थायी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। समाजनीति को काव्योपयोगी बनाने की विधि हिंदी में सियारामशरणजी को सबसे अधिक आती है। इस क्षेत्र में उनकी सफलता प्रायः अद्वितीय है। वीररस की फड़कती हुई कविता करने के कारण पंडित अनूप शर्मा को कुछ लोग आधुनिक भूषण कहते हैं। वास्तव में उनकी अनेक रचनाएँ अपूर्व ओजस्विनी हुई हैं। 'सुनाल' नामक खंडकाव्य तथा फुटकर कविताओं के अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत वर्णवृत्तों में

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

सिद्धार्थ नामक महाकाव्य लिखा है। पंडित गिरधर शर्मा "नवरत्न" संस्कृत के विद्वान् और हिंदी के अच्छे कवि हैं। इन्हें गुजराती और बँगला की कविता-पुस्तकों के अनुवाद में अच्छी सफलता मिली है। गुरुजी की कविताओं में व्याकरण के नियमों की अच्छी रक्षा हुई है। पंडित रामचरित उपाध्याय और पंडित लोचनप्रसाद पांडेय को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने प्रोत्साहित कर कवि बनाया था। उपाध्याय जी की 'रामचरित-चिंतामणि' अपने ढंग की सुंदर पुस्तक है। पांडेयजी की छोटी छोटी रचनाएँ अच्छी हुई हैं। पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी की फुटकर रचनाएँ अत्यंत उच्च कोटि की, भावपूर्ण एवं सरस, होती हैं। व्यंग और हास्य का मधुर पुट रहता है। भाषा सरल ओजस्विनी और भावानुरूप होती है। इन कवियों के अतिरिक्त स्वर्गीय पंडित मन्नन द्विवेदी की कविताएँ भी महत्त्व रखती हैं। पंडित श्यामनारायण पांडेय ने खड़ी बोली में वीररस की कविता करने में अच्छी सफलता प्राप्त की है। आप सरल भाषा में भावानुरूप शब्दों द्वारा ऐतिहासिक चित्र खड़ा कर देने में पर्याप्त कुशल हैं। "हल्दी घाटी" नामक खंड-काव्य में ऐसे स्थल अनेक हैं। प्रकृति-वर्णन करते समय कवि की सूक्ष्म दृष्टि और वर्णन हृदय-ग्राही है। "जौहर" भी उच्च कोटि का खंड-काव्य है।

आधुनिक स्त्री-कवियों में श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल की रचनाएँ विशेष सरल और छोटे छोटे पद्यों के रूप में हैं। इनमें उत्साह और कर्तव्य-विषक उद्गार व्याख्यान की सी ओजस्विनी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

भाषा में प्रकट किए गए हैं। मार्मिक कविता कम है। बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होकर उनकी सामूहिक प्रतिक्रिया का भाव ही कविता में अंकित करना पर्याप्त नहीं होता, उसमें व्यक्ति के अंतर की हलचल भी दिखाई देनी चाहिए। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने इस मर्म को पहचाना है अतः उनकी रचना में अधिक रस है। पारिवारिक जीवन के स्त्री-सुलभ पक्ष की आंतरिक अनुभूति सरल भाषा में उन्होंने व्यक्त की है। वीरोत्साह के पद्यों में उनकी 'झाँसी की रानी' ख्याति प्राप्त कर चुकी है। आशा और स्त्रीयोचित प्रसन्नता का वातावरण इनकी कविताओं में देख पड़ता है। श्रीमती महादेवी वर्मा श्रेष्ठ स्त्री-कवि हैं। निराशा और करुणा का स्रोत इनकी कृतियों में अजस्र रूप से प्रवाहित है। इनकी कल्पना-शक्ति हिंदी की आधुनिक स्त्री-कवियों में अद्वितीय है, अतः ये रूपों की विविधता अच्छी मात्रा में अंकित कर सकी हैं। आरंभ से लेकर अब तक इनकी काव्य-रचना का अच्छा विकास होता आया है। रहस्य-भावना से प्रेरित होकर उन्होंने उच्चकोटि की कविताएँ की हैं। प्रमुख रहस्य-वादी कवियों में आपका विशेष स्थान है। आगे चलकर अन्य रहस्यवादी कवियों के साथ इनका विशेष परिचय देंगे।

स्त्री कवि

हिंदी की काव्यधारा का सामान्य परिचय ऊपर दिया गया है। इधर कुछ समय से हिंदी कविता में रहस्यवाद या छायावाद की सृष्टि हो रही है। कुछ लोग रहस्यवाद या छायावाद को

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

आध्यात्मिक कविता बतलाते हैं और पाश्चात्य देशों के उदाहरण द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि धर्मगुरुओं और ज्ञानियों ने ही रहस्यवाद की कविता की है। हिंदी के कवि जायसी ने प्रकृति के विविध रूपों में अनंत विच्छेद और अनंत संयोग की जो झलक दिखलाई है, उसका उन्होंने स्वतः अनुभव किया था, केवल सूफी संप्रदाय की किंवदंती के आधार पर वह अवलंबित नहीं है। हिंदी की आधुनिक रहस्यवाद की कविता में थोड़ी बहुत सांप्रदायिकता अवश्य घुस आई है। छायावाद की कविता में सबसे खटकने वाली बात उसके भावों की अप्रासादकता है। इस संसार के उस पार जो जीवन है उसका रहस्य जान लेना सबके लिये सुगम नहीं है। दार्शनिक सिद्धांतों की अनुभूति भी सबका काम नहीं है। यह मान लेना कि जो सुगमता से दूसरों की समझ में न आ सके अथवा जिसमें विभिन्न या विपरीत भावों के द्योतक शब्दों का साहचर्य स्थापित किया जाय ऐसी कविता प्रतिभा की एकमात्र द्योतक है, कहाँ तक अनुचित या असंभव है, इसके कहने की आवश्यकता नहीं है।

छायावाद

हिंदी में छायावाद अथवा रहस्यवाद की कुछ समय तक तीव्र आलोचना होती रही और उसका पक्ष समर्थन करनेवाले कवियों तथा आलोचकों ने उसका मंडन भी विविध विधि से किया। आरंभ में यह समझना ही कठिन था कि इस प्रकार की कविता और तदितर कविताओं में भेद क्या है। कुछ लोगों ने

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

उसकी यही सरल परिभाषा मान ली थी कि नवीन धारा की ऐसी सब रचनाएँ छायावाद की हैं जो समझ में न आएँ। इसका कारण यह था कि पुरानी धारा के पक्षपाती अँगरेजी और बँगला साहित्य से प्रभावित तथा स्वच्छंदता की प्रवृत्ति से उद्भूत नए ढंग की कविताओं की शैली से अपने को पूर्ण परिचित नहीं कर सके थे। पर हमारे नवीन शैली के सच्चे कवि इससे घबराए नहीं वरन् और उत्साह के साथ अपनी रचनाओं में संलग्न रहे, और आगे चलकर उन्होंने मैदान अपने हाथ में कर लिया। पुरानी धारा के कवि भी उनसे प्रभावित हुए।

यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि भाषा, छंद, शैली आदि की दृष्टि से नवीन समस्त रचनाएँ छायावाद की नहीं कही जा सकतीं। छायावाद और रहस्यवाद वस्तुतः एक दूसरे के पर्याय हैं और काव्य के विषय से संबंध रखते हैं शैली या भाषा से नहीं। अज्ञात और अव्यक्त सत्ता के प्रति जिसमें भाव प्रकट किए जाते हैं वही कविता रहस्यवाद की कही जा सकती है। यह सच है कि आधुनिक रहस्यवाद की कविता भी नवीन शैली के अंतर्गत हुई, पर रहस्यवाद से शैली आदि की नवीनता करने के लिये उसे स्वच्छंदतावाद या नवीनतावाद कहना ही उचित होगा।

छायावाद का रहस्य

यहाँ पर यह कह देना बहुत आवश्यक जान पड़ता है कि हिंदी के रहस्यवादी कवियों में जिनकी गणना होती है, वे सब के सब रहस्यवादी नहीं हैं। उनमें से कुछ ने तो रहस्यवाद की

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

एक भी कविता नहीं लिखी। अँगरेजी लीरिक कविता के ढंग पर रचना करनेवाले कितने ही नवीन कवि रहस्यवादी कहलाने लगे हैं। बाबू जयशंकर प्रसाद कुछ पहले से ही रहस्यवाद की रचनाएँ करने लगे थे।

छायावाद के कवि

उनकी कविता में सूफी कवियों का ढंग अधिकतर पाया जाता है, यद्यपि अँगरेजी कविता की पालिश भी उनमें कम नहीं है। प्रसादजी ने संस्कृत साहित्य का भी अच्छा अध्ययन किया था और उनकी कविता की भाषा संस्कृत-प्रधान हुई है। जयशंकर प्रसादजी अत्यंत भावुकहृदय थे। उनकी कविता भी अत्यंत भावुकतामयी है।

प्रसाद

सूक्ष्म लाक्षणिकता और भावनामय आभ्यंतर जीवन का स्पष्टीकरण उनकी विशेषता है। लाक्षणिकता के बल से वे भावना को साकार करना खूब जानते थे। वे आर्य जाति के अतीत के बड़े उपासक थे। उसका पुनर्निर्माण कर उन्होंने अपने नाटकों और काव्यों के रूप में जगत् के सामने रखा है। उनके नाटक या तो भावनाओं से संबंध रखते हैं या भारत के अतीतकाल से। अजातशत्रु, राज्यश्री, स्कंदगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ, चंद्रगुप्त आदि नाटक सब प्राचीन भारत से संबंध रखते हैं और कहीं कहीं आज का मार्ग निर्दिष्ट करते हैं, जैसे, स्कंदगुप्त में। प्रत्येक नाटक में सुंदर गीत, स्थल स्थल पर, बिखरे हुए हैं जिनमें काव्य का उत्कर्ष दिखलाई देता है, यद्यपि भाषा-शैली तथा भावों की सूक्ष्मता के कारण सामान्य पाठकों के लिये उनमें दुरूहता आ गई है।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

प्रसादजी की कल्पना उनके तीव्र सौंदर्य-प्रेम के अनुरूप ही अत्यंत कोमल तथा उनकी प्रतिभा बड़ी संपन्न थी। पर उनके सौंदर्य-प्रेम में शारीरिक पक्ष का आधार होते हुए भी प्रधानता मानसिक पक्ष की ही पाई जाती है और उस पर उनकी दार्शनिकता का प्रभाव बराबर पाया जाता है। ससीम रूप-सौंदर्य भी उनके निस्सीम हृदय में आकर निस्सीम सौंदर्य की ओर ले जाता है, जो चिर-सुंदर के साथ चिर-सत्य और चिर-आनंद है तथा जो वस्तुतः अपने ही चैतन्य (आत्म) की वह शिव अवस्था है जिसे वह जड़ता की माया के वशीभूत होकर खो बैठता है।

अपने 'कामायनी' नामक महाकाव्य में उन्होंने भारतीय इतिहास के अरुणोदय अर्थात् मनुकाल का पुनर्निर्माण किया है, और अपनी कल्पना और खोज के द्वारा उस युग का एक चित्र प्रस्तुत किया है जहाँ पुरातत्त्व-वेत्ताओं की भी दृष्टि अच्छी तरह प्रवेश नहीं कर पाई है।

इस महाकाव्य में मानव का इतिहास तो है ही साथ ही इसमें कवि की काव्य-कला का पूर्ण विकास हुआ है और उसके दार्शनिक विचारों की भी रूप-रेखा बहुत कुछ स्पष्ट हो गई है, जिस पर अभेद शैव-दर्शन की गहरी छाप है। प्रसाद ने संवेदन, चिंता, मनीषा, बुद्धि या विवेक को दुःख का कारण कहकर उसकी निंदा की है। यह उनके बुद्धिवाद का विरोध शैव-दर्शन के अनुसार ही है। उसमें ज्ञान बंधन का कारण बतलाया गया है, पर इसका अर्थ अभेद का ज्ञान नहीं जो बंधन से छुड़ाने-

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वाला है, वरन् भेद और अनेकता का ज्ञान है जो मायाकृत है। स्मृति की अवस्था से निकलकर विस्मृति की अवस्था में जाने के लिये प्रसाद की प्रायः सभी रचनाओं में जो उनकी व्याकुलता दिखाई पड़ती है, उसमें भी बुद्धि, संवेदन, विवेक या 'ज्ञान' का तिरस्कार इसी लिये है।

भारतीय अद्वैतवाद को लेकर काव्य क्षेत्र में आनेवाले कवियों में पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' मुख्य हैं। निराला-

निराला

जी ने प्रकृत कवि की सहज भावुकता के साथ साथ काव्य-क्षेत्र में दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रवेश किया है। उनकी रचनाओं को यह दार्शनिकता सूत्र रूप से बेधती चली जाती है और कहीं कहीं तो स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है। उनकी भावुकता उसे ऐसा बाना पहना लेती है जिससे वह काव्य के क्षेत्र में खटकनेवाली वस्तु नहीं रह जाती। पद्यावली के चयन तथा शब्दों के द्वारा चित्र निर्माण में निराला जी बहुत निपुण हैं। उनमें स्वतंत्रता की प्रवृत्ति बहुत तीव्र रूप से विद्यमान है। छंद के बंधन से कविता को मुक्त करने का उन्होंने बहुत प्रयत्न किया है वे बहुधा मुक्तक छंद में ही अपनी कविताएँ रचा करते हैं। परंतु उनके ये मुक्तक छंद भी नाद-सौंदर्य से हीन नहीं है। उनकी अपनी गति है। कवित्त के आधार पर उनका निर्माण हुआ है जिससे वे हिंदी की प्रकृति के विरुद्ध नहीं पड़ते।

निराला की शब्दावली बहुधा संस्कृति-गर्भित होती है, किंतु वे इस विषय में कट्टरता के पक्षपाती नहीं; परंतु कभी कभी संस्कृत

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

के ऐसे अप्रचलित शब्दों का प्रयोग कर बैठते हैं कि बहुत सामान्य भाव भी दुरूह हो जाता है। अपनी हाल में प्रकाशित 'तुलसीदास' नाम की रचना में उन्होंने तुलसीदास के जीवन को बड़े भव्य रूप में उपस्थित किया है।

निराला तथा पंडित सुमित्रानंदन पंत ने पश्चमीय शैली का अधिक प्रश्रय लिया है और रवींद्रनाथ की भाँति वैष्णव कविता की भी सहायता ली है।

सुमित्रानंदन पंत हलकी लाक्षणिकता को लेकर कोमलता की शक्ति का निदर्शन करके काव्य क्षेत्र में अवतरित हुए हैं।

पंत

उनके भाव सुकुमार, भाषा मधुर और कल्पना कोमल है विशेषकर प्रकृति के नाना रूपों से उनके हृदय का सामंजस्य घटित हुआ है और उनके दर्शन से प्राप्त आल्हाद का उन्होंने अपने काव्य में वर्णन किया है। इसके अनंतर मानव प्राकृति की विभिन्न कोमल दशाओं और अंतर्दशाओं ने भी उनके हृदय को ध्वनि पूर्ण किया है। 'पल्लव' में उनकी कविताएँ बहुधा प्रकृति से ही संबंध रखती है। 'ग्रंथि' प्रेम की ओर अग्रसर हुई है। 'वीणा' और 'गुंजन' में अन्य नाना प्रकार की सुख-दुख की अनुभूतिओं के गीतों का रूप धारण किया है। सुमित्रानंदन पंत में कल्पना का चमत्कार, भावुकतामय प्रगल्भता और शब्द लालित्य प्राचुर मात्रा में पाये जाते हैं। खड़ी बोली के रूखेपन को दूर कर उसमें काव्योपयोगी मधुरता लाने में उनका सबसे अधिक हाथ है। उनकी रचनाओं में खड़ी बोली बहुत कुछ

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कोमल होकर आई है। वस्तुओं का मनोरम चित्र उपस्थित करने में पंत के लाक्षणिक प्रयोग बड़े सुदर बन पड़े हैं और विभिन्न चित्रों के गुणानुरूप शब्दों का चयन भी बड़ी पटुता के साथ किया है।

कवि की कल्पना केवल सुदर पर्वतीय दृश्य, शिशु की स्वर्गीय मुस्कराहट और निशा के मौन निमंत्रण में ही बँधी नहीं रहती, विषय के अनुरूप वह सुकुमार लक्ष्मी से भयंकर चंडी का रूप भी धारण कर सकती है। परंतु इधर कुछ समय से पंत की लेखनी कल्पना के रंगीन आकाश से उतरकर सामान्य धरा पर के यथार्थ जीवन की अनुभूतियों के चित्रण में विशेष रूप से प्रवृत्त हुई है और इस पर काल की गति के साथ चली है। उस पर देश के वर्तमान लोकप्रिय राजनीतिक सिद्धांतों का भी प्रभाव स्पष्ट है। ऐसी कविताओं का संग्रह 'युगांत' और 'युगवाणी' में हुआ है।

श्री महादेवी वर्मा में भी रहस्य-भावना का आधिक्य है। जिस कसक और अंतर्वेदना से प्रेरित होकर उनका संगीत फूट पड़ता है वह सांसारिक अभाव से जनित कहीं, किसी जगद्-बाह्य वासना से उद्गत है। उनकी कविता निस्संदेह हृदय पर चोट करनेवाली होती है।

महादेवी

प्रमुख रहस्यवादी कवियों में केवल महादेवी ही ऐसी है, जिनमें रहस्यात्मकता की धारा एक रूप से बराबर अब तक चली आ रही है। 'नीहार', 'रश्मि' 'नीरजा' और 'सांध्यगीत'

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

के अतिरिक्त 'यामा' में भी उनकी कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ है। इनकी भाषा में कोमलता तथा कल्पना में सुकुमारता है। वेदना की कसमसाहट तथा करुण और निराशा की एक अंतर्धारा इनकी रचनाओं में व्यापक रूप से पाई जाती है।

इनके अतिरिक्त पंडित मोहनलाल महतो की रचनाओं में भी रहस्यवाद की छाप है। रवींद्रनाथ को काव्यगुरु स्वीकार करने-वाले ये ही हैं, यद्यपि रवींद्र की कविता की थोड़ी बहुत छाया सबमें मिलती है।

समस्यापूर्ति

समस्या-पूर्ति की प्रथा बहुत पुरानी है। पर इसका बाहुल्य इतना कभी नहीं हुआ था जितना आजकल है। पहले-पहल किसी भाषा में कविता करने की अभिरुचि उत्पन्न करने के लिये समस्यापूर्ति का सहारा लेना लाभकारक हो सकता है। यह साधन मात्र है; इसे साध्य का स्थान देना उचित नहीं है।

हिंदी कविता का भविष्य

अब तक की कविता का ऊपर जो विवरण दिया गया है, उससे यह तो प्रकट होता है कि कविता की अनेकमुखी प्रगति इस युग में हो रही है, पर साथ ही यह भी प्रकट होता है कि विशेष अंतर्दृष्टि-संपन्न महान् कवियों का अभ्युदय अब तक नहीं हुआ है। यह युग हिंदी के सर्वतोमुख विकास का है। पश्चिमीय शैलियों का ग्रहण इस युग की प्रधान विशेषता है। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति हो रही है। फिर भी अब तक परिवर्तन का ही युग चल

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

रहा है। परिवर्तन के युग में जीवन की महान् और चिरकालीन भावनाओं को लेकर काव्य-रचना करना प्रायः असंभव होता है। साहित्यकारों का लक्ष्य जब तक परिवर्तन की ओर से हट-कर जीवन की ओर नहीं जाता, तब तक उत्कृष्ट साहित्य की सृष्टि नहीं हो सकती। परंतु इस समय देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति भी अच्छी नहीं है। प्रतिभाशाली अनेक व्यक्ति साहित्य-क्षेत्र से अलग काम करते हैं। साहित्य अब तक जीवन की गहनता के बाहर का दिखलाऊ नंदन-निकुंज बना हुआ है। इसलिये सच्चे कर्मनिष्ठ उस ओर से विरक्त रहते हैं। साहित्य के लिये यह दुर्भाग्य की बात है। रूस और फ्रांस के उत्कृष्ट साहित्यकार प्रबल क्रांतियों के भीतर से उत्पन्न हुए थे, तमाशा देखनेवालों के अंदर से नहीं। भारत में भी क्रांति का वैसा युग आया हुआ है। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में ही इस सर्वतोव्याप्त हलचल के बीच में किसी दिव्यात्मा का उदय होगा जिससे हिंदी कविता की कल्याण-साधना होगी और जिससे अखिल भारतीय जन-समाज को प्रेम मार्ग मिलेगा।

——

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

दसवाँ अध्याय

आधुनिक काल

गद्य

आधुनिक युग की सबसे बड़ी विशेषता है खड़ी बोली में गद्य का विकास। इस भाषा का इतिहास बड़ा ही रोचक है।

गद्य का विकास

यह भाषा मेरठ के चारों ओर के प्रदेश में बोली जाती है और पहले वहीं तक इसके प्रचार की सीमा थी, बाहर इसका बहुत कम प्रचार था। पर जब मुसलमान इस देश में बस गए और उन्होंने यहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया तब दिल्ली में मुसलमानी शासन का केंद्र होने के कारण विशेष रूप से उन्होंने उसी प्रदेश की भाषा खड़ी बोली को अपनाया। यह कार्य एक दिन में नहीं हुआ। अरब, फारस और तुर्किस्तान से आए हुए सिपाहियों को यहाँ-वालों से बातचीत करने में पहले बड़ी कठिनता होती थी। न ये उनकी अरबी, फारसी समझते थे और न वे इनकी हिंदवी। पर बिना वाग्व्यवहार के काम चलना असंभव था, अतः दोनों ने दोनों के कुछ कुछ शब्द सीखकर किसी प्रकार आदान प्रदान का मार्ग निकाला। यों मुसलमानों की उर्दू (छावनी) में पहले पहल एक खिचड़ी पकी जिसमें दाल चावल सब खड़ी

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

बोली के थे, सिर्फ नमक आगंतुकों ने मिलाया। आरंभ में तो वह निरी बाजारू बोली थी, पर धीरे धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानों को यहाँ की भाषा के ढाँचे का ठीक ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ स्थिर हो चला। जहाँ पहले शुद्ध, अशुद्ध बोलनेवालों से सही गलत बोलनेवाले के लिये शाहजहाँ को "शुद्धौ सहीह इत्युक्तौ ह्यसुद्धो गलतः स्मृतः" का प्रचार करना पड़ा था वहाँ अब इसकी कृपा से लोगों के मुँह से शुद्ध-अशुद्ध न निकलकर सही गलत निकला करता है। आजकल जैसा अँगरेजी पढ़े-लिखे भी अपने नौकर से एक ग्लास पानी न माँगकर एक गिलास ही माँगते हैं, वैसे उस समय मुख-सुख उच्चारण और परस्पर बोध सौकर्य के अनुरोध से लोग अपने ओजवेक का उजबक, कुतका का कोतका कर लेने देते और स्वयं करते थे, एवं ये लोग बेरहमन सुनकर भी नहीं चौंकते थे। बैसवाड़ी हिंदी, बुंदेलखंडी हिंदी, पंडिताऊ हिंदी और बाबू इँगलिश को तरह यह उस समय उर्दू हिंदी कहलाती थी, पर पीछे भेदक उर्दू शब्द स्वयं भेद्य बनकर उसी प्रकार उस भाषा के लिये प्रयुक्त होने लगा जिस तरह संस्कृत वाक् के लिये केवल संस्कृत शब्द। मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के प्रचार का सबसे बड़ा साधन मानकर इस भाषा को खूब उन्नत किया और जहाँ जहाँ फैलते गए, वे इसे अपने साथ लेते गए। उन्होंने इसमें केवल फारसी तथा अरबी के शब्दों की ही उनके शुद्ध रूप में अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी फारसी अरबी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

व्याकरण का रंग चढ़ाया। इस अवस्था में इसके दो रूप हो गए, एक तो हिंदी कहलाता रहा और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ। दोनों के प्रचलित शब्दों को ग्रहण करके, पर व्याकरण का संघटन हिंदी के ही अनुसार रखकर, अँगरेजों ने इसका एक तीसरा रूप हिंदुस्तानी बनाया। अतएव इस समय खड़ी बोली के तीन रूप वर्तमान हैं—(१) शुद्ध हिंदी जो हिंदुओं की साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिंदुओं में है, (२) उर्दू जिसका प्रचार विशेषकर मुसलमानों में है और जो उनके साहित्य की और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिंदुओं की घर के बाहर की बोलचाल की भाषा है, और (३) हिंदुस्तानी जिसमें साधारणतः हिंदी उर्दू दोनों के शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका बहुत से लोग बोलचाल में व्यवहार करते हैं। इस तीसरे रूप के मूल में राजनीतिक कारण हैं और अभी तक यह उच्च कोटि के गंभीर साहित्य की रचना के अनुपयुक्त पाई गई है।

प्रत्येक उन्नत भाषा के साहित्यिक और बोलचाल के रूप में कुछ अंतर पाया जाता है। हिंदुस्तानी की साधारण परिभाषा के अनुसार वह हिंदी के बोलचाल के रूप का ही नाम है, अतः उसमें गंभीर साहित्य की रचना हो भी नहीं सकती। परंतु कतिपय उर्दू साहित्य के विद्वान् को ही हिंदुस्तानी के नाम से अभिहित करते हैं, जिनमें अरबी, फारसी तक के तत्सम शब्दों का तो स्वतंत्रता और प्रचुरता से व्यवहार होता है, पर संस्कृत के सरल और प्रचलित राजा, माता, गुरु जैसे शब्दों का

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कठोर वहिष्कार किया जाता है। हिंदुस्तानी के नाम से भाषा का एक और रूप गढ़ने की भी निष्फल चेष्टा की गई जिसमें संस्कृत और फारसी आदि के शब्दों का बेढंगा मेल बैठाया गया। इस प्रकार के प्रयत्नों के मूल में राजनीतिक कारण हैं।

हिंदी गद्य के प्रथम आचार्य

पद्य में खड़ी बोली का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से पाया जाता है, परंतु गद्य में भी यह उतनी नई नहीं है जितनी समझी जाती है। भ्रमवश हिंदी में खड़ी बोली गद्य के जन्मदाता लल्लूजीलाल माने जाते हैं। यह भ्रम उन अँगरेजों के कारण फैला है जो अपने आने के पहले गद्य का अस्तिव हिंदी में स्वीकार ही नहीं करते थे। परंतु यह बात असत्य है। अकबर बादशाह के यहाँ संवत् १६२० के लगभग गंग भाट था। उसने "चंद छंद बरनन की महिमा" खड़ी बोली के गद्य में लिखी है। उसके पहले का कोई प्रामाणिक गद्य-लेख न मिलने के कारण उसे खड़ी बोली का प्रथम गद्यलेखक मानना चाहिए। लल्लूजी-लाल हिंदवी को आधुनिक रूप देनेवाले भी नहीं हैं। उनके और पहले का मुंशी सदासुख का किया हुआ हिंदी का गद्य वर्तमान है। इसके अनंतर इंशाउल्लाखाँ, लल्लूजीलाल तथा सदल मिश्र का समय आता है। इंशाउल्लाखाँ की रचना में शुद्ध तद्भव शब्दों का प्रयोग है। उनकी भाषा सरल और सुंदर है पर वाक्यों की रचना उर्दू ढंग की है। इसी लिये कुछ लोग उसे हिंदी का नमूना न मानकर उर्दू का पुराना नमूना

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

मानते हैं। लल्लूजीलाल के प्रेमसागर से सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान की भाषा अधिक पुष्ट और सुंदर है। प्रेमसागर में भिन्न भिन्न प्रयोगों के रूप स्थिर नहीं देख पड़ते। करि, करिके, बुलाय, बुलाय करि, बुलाय करिके, बुलाय कर, आदि अनेक रूप अधिकता से मिलते हैं। सदल मिश्र में यह बात नहीं है। सारांश यह कि लल्लूजीलाल के प्रेमसागर की भाषा हिंदी गद्य-साहित्य के विकास की दृष्टि से उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान की।

लल्लूजीलाल और सदल मिश्र दोनों ही सज्जनों का कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज से घनिष्ठ संबंध था। इस कालेज की स्थापना सं० १८५७ में मार्क्विस वेलेजली के द्वारा हुई थी और इसके फारसी और हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष डा० गिलक्रिस्ट थे। लल्लूजीलाल भाखा-मुंशी तथा सदल मिश्र हिंदुस्तानी विभाग में अध्यापक थे। परंतु इस संबंध से यह समझना भ्रम है कि डा० गिलक्रिस्ट या फोर्ट विलियम कालेज ने हिंदी गद्य की उन्नति के लिये प्रयत्न किया। डा० गिलक्रिस्ट वस्तुतः फारसी लिपि और उर्दू भाषा के पक्षपाती थे जिसे वे हिंदुस्तानी कहते थे। इस समय थोड़े से शिक्षित हिंदू मुसलमानों के व्यवहार में आनेवाली जो भाषा थी उसे डा० गिलक्रिस्ट महोदय भ्रमवश भारतीय जनता की सामान्य भाषा समझते थे। अतः उनके लिये स्वाभाविक था कि वे उर्दू गद्य को प्रोत्साहन देते। लल्लूजीलाल और सदल मिश्र से कालेज के लिये पुस्तकें अवश्य लिखाई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

गईं, परंतु प्रेमसागर की आवश्यकता केवल उर्दू पढ़ानेवालों को भाखा के मुहावरों तथा हिंदू जनता के रीति-रिवाज से परिचित कराने के लिये थी। नासिकेतोपाख्यान को कालेज के पाठ्य क्रम में कोई स्थान ही नहीं दिया गया। प्रेमसागर के अतिरिक्त लल्लूजीलाल की 'बैतालपचीसी' और 'सिंहासनबत्तीसी' नामक पुस्तकों की भाषा वही हिंदुस्तानी या उर्दू है और उनकी 'राजनीति' की भाषा व्रजभाषा है। यह बात अवश्य है कि आगे चलकर सं० १८८१ में कालेज के पाठ्यक्रम में हिंदी की कुछ अधिक पूछ हुई, पर गद्य का स्थान इसमें नहीं था। इन बातों से स्पष्ट है कि आधुनिक हिंदी खड़ी बोली गद्य की अपेक्षा डा० गिलक्रिस्ट और फोर्ट विलियम कालेज का ऋण उर्दू पर अधिक है।

उपर्युक्त चार लेखकों ने हिंदी की पहले पहल प्रतिष्ठा की और उसमें ग्रंथ-रचना की चेष्टा की। इनमें मुंशी सदासुख और सदल मिश्र की भाषा अधिक उपयुक्त ठहरती है। इनमें सदासुख को अधिक सम्मान मिलना चाहिए, क्योंकि ये कुछ पहले भी हुए और इन्होंने अधिक साधु भाषा का व्यवहार भी किया। इनके उपरांत विदेशों में आई हुई क्रिश्चियन मत का प्रचार करनेवाली धर्मसंस्थाओं अथवा मिशनों ने हिंदी में अपने कुछ धर्मग्रंथों, विशेषकर बाइबिल का अनुवाद किया। बाइबिल का अनुवाद भाषा की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह देश के विस्तृत भू-भाग में फैली हुई खड़ी बोली की सामान्यतः साधु भाषा में किया गया है। पता चलता है कि राजनीतिक दाँवपेंच

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

को पहले से ही जानने और प्रयोग करनेवाले अँगरेजों ने मुसलमानों की उर्दू को कचहरियों में जगह दी थी, पर वे भली भाँति जानते थे कि उर्दू यहाँ के जनसमाज की भाषा कदापि नहीं; नहीं तो बाइबिल के अनुवाद के शुद्ध हिंदी में होने का कोई कारण नहीं। उर्दूपन उससे बहुत दूर रखा गया। उसकी भाषा का रूप सदासुख और लल्लूजीलाल की भाषा की ही भाँति है, पर विदेशीय रचना-शैली के कारण थोड़ा-बहुत अंतर अवश्य देख पड़ता है। लल्लूजीलाल की भाषा में ब्रज की बोली मिली हुई है, पर उपर्युक्त अनुवाद-ग्रंथों में उसका बहिष्कार कर मानों खड़ी बोली के आगामी प्रसार की पूर्व सूचना सी दी गई है। जब ईसाइयों की धर्म-पुस्तकें निकल रही थीं तब छापने की कल इस देश में आ चुकी थी, जिससे पुस्तकों के प्रचार में बड़ी सहायता मिली।

छापेखानों के फैल जाने पर हिंदी की पुस्तकें शीघ्रता से बढ़ चलीं। इसी समय सरकारी अँगरेजी स्कूल भी खुले और उनमें हिंदी उर्दू का झगड़ा खड़ा किया गया। मुसलमानों की ओर से सरकार को यह समझाया गया कि उर्दू को छोड़कर दूसरी भाषा संयुक्त प्रांत में है ही नहीं। कचहरियों में उर्दू का प्रयोग होता है, मदरसों में भी होना चाहिए। परंतु सत्य का तिरस्कार बहुत दिनों तक नहीं किया जा सकता। देवनागरी लिपि की सरलता और उसका देशव्यापी प्रचार अँगरेजों की दृष्टि में आ चुका था। लिपि के विचार से उर्दू की क्लिष्टता और अनुपयुक्तता भी आँखों के सामने आती जा रही थी। परंतु

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

नीति के लिये सब कुछ किया जा सकता है। अँगरेज समझकर भी नहीं समझना चाहते थे। इसी समय युक्त प्रांत में स्कूलों के इंस्पेक्टर हिंदी के पक्षपाती काशी के राजा शिवप्रसाद नियुक्त किए गए। राजा साहब के प्रयत्न से देवनागरी लिपि स्वीकार की गई और स्कूलों में हिंदी को स्थान मिला। राजा साहब ने अपने अनेक परिचित मित्रों से पुस्तकें लिखवाईं और स्वयं भी लिखीं। उनकी लिखी हुई कुछ पुस्तकों में अच्छी हिंदी मिलती है, पर अधिकांश में उर्दू-प्रधान भाषा ही उन्होंने लिखी। ऐसा उन्होंने समय और नीति को देखते हुए अच्छा ही किया। इसी समय के लगभग हिंदी में संस्कृत के शकुंतला नाटक आदि का अनुवाद करनेवाले राजा लक्ष्मणसिंह हुए जिनकी कृतियों में सर्वत्र शुद्ध संस्कृत-विशिष्ट खड़ी बोली प्रयुक्त हुई है। दोनों राजा साहबों ने अपने अपने ढंग से हिंदी का महान् उपकार किया था, इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

गद्य के क्षेत्र में भारतेंदु और उनके समकालीन

भारतेंदु हरिश्चंद्र के कार्य-क्षेत्र में आते ही हिंदी में समुन्नति का युग आया। अब तक तो खड़ी बोली गद्य का विकास होता रहा और पाठशालाओं के उपयुक्त छोटी छोटी पुस्तकें लिखी जाती रहीं, पर अब साहित्य के अनेक अंगों पर ध्यान दिया गया और उनमें पुस्तक-रचना का प्रयत्न किया गया। भारतेंदु ने अपने बंगाल-भ्रमण के उपरांत बँगला के नाटकों का अनुवाद किया और मौलिक नाटकों की रचना की। कविता में देशप्रेम

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

के भावों का प्रदुर्भाव हुआ। पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। हरिश्चंद्र मैगजीन और हरिश्चद्र पत्रिका भारतेंदुजी के पत्र थे। छोटे छोटे निबंध भी लिखे जाने लगे। उनके लिखनेवालों में हरिश्चंद्र के अतिरिक्त पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि थे। नाटककारों में श्रीनिवासदास और राधाकृष्णदास का नाम उल्लेखनीय है। "परीक्षा-गुरु" नामक एक अच्छा उपन्यास भी उस समय लिखा गया। आर्य-समाज के कार्यकर्त्ताओं के स्वामी दयानंद के उपरांत सबसे प्रसिद्ध पंडित भीमसेन शर्मा हुए जिन्होंने आर्यसमाज का अच्छा साहित्य तैयार किया। पंडित अंबिकादत्त व्यास भी उस काल के मौलिक लेखकों में से थे। अखबारनवीसों में बाबू बालमुकुंद गुप्त सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि गद्य के विभिन्न अंगों को लेकर बड़े ही उत्साहपूर्वक उनमें मौलिक रचनाएँ करनेवाले हिंदी के ये उन्नायक बड़े ही शुभ अवसर पर उदय हुए थे। इनकी वाणी में हिंदी के बाल्यकाल की झलक है, पर यौवनागम की सूचना भी मिलती है। देशप्रेम और जातिप्रेम की भावनाओं को लेकर साहित्यक्षेत्र में आने के कारण इन सब की रचनाएँ हिंदी में अपने ढंग की अनोखी हुई हैं।

भारतेंदु की नाटक रचना शैली में भारतीय शैली और पाश्चात्य शैली का सम्मिश्रण हुआ है। भारतीय शैली के अंकों और गर्भांकों तथा विष्कंभक आदि को बदलकर बँगला के ढंग

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पर अंक और दृश्य की परिपाटी चली, पर संस्कृत के सूत्रधार नटी प्रस्तावना आदि ज्यों के त्यों बने रहे। चरित्रों का चित्रण करने में भारतेंदु ने संस्कृत के वर्गीकरणों का अनुसरण किया, पात्रों की वैयक्तिक विशेषताओं की ओर ध्यान नहीं दिया। यद्यपि उनके अनेक नाटक अनुवादित नाटक ही हैं और उनके मौलिक अधिकांश नाटकों में भी कथानक का निर्माण उन्हें नहीं करना पड़ा है, पर कुछ नाटकों में उन्होंने अपनी कथानक-निर्माण की शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। सत्य हरिश्चंद्र में सत्य का उच्च आदर्श दिखाया गया है। अन्य नाटकों में प्रेम की पवित्र धारा बही है। भारत-दुर्दशा में स्वदेशानुराग चमक उठा है। भारतेंदु की परिमार्जित गद्य-शैली का व्यवहार उनके सभी नाटकों में देख पड़ता है। हाँ, विषय और प्रसंग के अनुसार भाषा सरल अथवा जटिल हो गई है। लाला श्रीनिवासदास के "रणधीर प्रेममोहिनी" "संयोगिता स्वयंवर" आदि नाटक तथा बाबू राधाकृष्णदास का "महाराणा प्रताप नाटक" साहित्यिक दृष्टि से अच्छे हैं, यद्यपि रंगशाला के उपयुक्त नहीं। प्रेमघनजी का "भारत सौभाग्य" नाटक भी अच्छा है, पर बहुत बड़ा हो गया है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का "चंद्रकला भानुकुमार नाटक" गद्य काव्य की शैली में लिखी गई सुंदर कृति है।

हिंदी साहित्य का यह विकास बड़ा ही आशाप्रद और उत्साह-वर्द्धक था। थोड़े समय की यह साहित्यिक प्रगति उस काल के लेखकों के मनोयोग और कृतिशीलता की परिचायक

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

हुई है। इस काल के उपरांत साहित्य के सभी अंगों की बड़ी सुंदर उन्नति हो चली और प्रत्येक क्षेत्र में अच्छे अच्छे लेखकों का अभ्युदय हुआ। साहित्य के सौभाग्य से उसी समय काशी नागरीप्रचारिणी सभा की नींव डाली गई और पीछे से सरस्वती जैसी उच्च कोटि की मासिक पत्रिका निकली। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे श्रेष्ठ पत्रकार और व्याकरणविद् विद्वान् के हाथों में जाकर "सरस्वती" ने भाषासंस्कार का जो अभूतपूर्व कार्य किया उसका सब श्रेय उसके संपादक को है। भाषा को काट-छाँटकर दुरुस्त करने, व्याकरण के नियमों की प्रतिष्ठा करने, नवीन लेखकों में उत्साह बढ़ाने और अँगेरेजी की ओर झुके हुए अनेक नवयुवकों को हिंदी की ओर खींचने का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य द्विवेदीजी ने किया।

नागरी-प्रचारिणी सभा और सरस्वती

भारतेंदु हरिश्चंद्र के गोलोकवास के आठ वर्ष के उपरांत हिंदी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार, प्रसार तथा उन्नति के उद्देश से संवत् १९५० में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। सभा का उद्देश्य नागरी लिपि तथा हिंदी भाषा का प्रचार, प्रसार तथा उन्नति करना था। सभा अपने सदुद्देश में पूर्ण सफल हुई और उसने हिंदी भाषा और साहित्य की जो सेवा की उस पर किसी भी संस्था को गौरव हो सकता है। सभा ने संयुक्त प्रांत के न्यायालयों में हिंदी को स्थान दिलाया, हिंदी के प्राचीन ग्रंथों का अनुसंधान करके उन्हें प्रकाशित कराया, पारितोषिक देकर उच्च कोटि के साहित्य-प्रकाशन को प्रोत्साहन

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

प्रदान किया, हिंदी में विज्ञान-संबंधी शब्दों की रचना करके "हिंदी वैज्ञानिक कोश" निर्माण कराया और "हिंदी-शब्द-सागर" के सदृश बृहत् और महत्त्वपूर्ण शब्दकोश संपादित कर प्रकाशित किया। इस प्रकार हिंदी-साहित्यक्षेत्र के निर्माण का बहुत कुछ प्रारंभिक कार्य इसी सभा के द्वारा हुआ है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के स्तंभ राय बहादुर श्यामसुंदर-दास हैं। उनमें संगठन करने और संस्था का सुचारु रूप से संचालन करने की अपूर्व क्षमता है। वे लोगों से काम लेना खूब जानते हैं। अतः नागरी-प्रचारिणी सभा की सफलता का प्रायः अधिकांश श्रेय बाबू साहब ही को प्राप्त है। इस हेतु हिंदी-जगत् बाबू साहब का ऋणी और कृतज्ञ रहेगा। नागरी-प्रचारिणी सभा के विशाल कार्य-क्षेत्र के अतिरिक्त बाबू श्यामसुंदरदास ने ग्रंथ-रचना के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण और युग-प्रवर्तक कार्य किया है और हिंदी के अनेक रिक्त अंगों की पूर्ति की है। कालेजों की उच्च कक्षाओं के उपयुक्त ग्रंथों के नितांत अभाव का बाबू साहब को उस समय अनुभव हुआ जब वे पहले पहल काशी-विश्वविद्यालय में हिंदी-विभाग की स्थापना करने और हिंदी-शिक्षा का कार्यक्रम बनाने के लिये पूज्य मालवीयजी द्वारा बुलाए गए। सर्वप्रथम बाबू साहब ने ही समझा कि प्रचलित वाहवाही समालोचनाओं से काम न चलेगा, इसलिये उन्होंने 'साहित्यालोचन' लिखकर आलोचना-संबंधी गंभीर सिद्धांतों को अच्छी तरह समझाया। 'साहित्यालोचन' में पश्चिम और पूर्व

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

के साहित्य-तत्त्व का मार्मिक और तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इसका नवीन संशोधित और परिवर्धित संस्करण अभी, थोड़े दिन हुए, निकला है जो आलोचना शास्त्र के एक प्रामाणिक और विश्वस्त ग्रंथ के अभाव की पूर्ति करता है। इस ग्रंथ में दिए हुए सिद्धांतों का व्यावहारिक रूप दिखलाते हुए बाबू साहब ने हिंदी कवियों पर आलोचनात्मक निबंध लिखे जिनमें 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' और 'तुलसीदास की जीवनी' मुख्य हैं। साहित्यिक आलोचना के उन्हीं सिद्धांतों को और अधिक स्पष्ट करते हुए आपने 'हिंदीभाषा और साहित्य'* नाम का एक आदरणीय ग्रंथ लिखा जो अनेक विद्वानों द्वारा प्रशंसित हुआ है। यह ग्रंथ हिंदी के इतिहास की प्रामाणिक, विद्वत्तापूर्ण और निष्पक्ष पुस्तक है। साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, भाषा के क्षेत्र में भी आपने महत्त्वपूर्ण अनुसंधान की नींव डाली है जिसका निदर्शन आपके 'भाषा-विज्ञान' और 'भाषा-रहस्य' नामक ग्रंथ हैं। भाषा-विज्ञान के नवीन संस्करण में इस विज्ञान का बड़ा ही सुंदर विवेचन किया गया और विवरण दिया गया है। भाषा-विज्ञान पर यह ग्रंथ अपने ढंग का निराला है। इस प्रकार उच्च श्रेणी के पाठकों और विद्यार्थियों के उपयुक्त ग्रंथ-रचना का प्राथमिक कार्य आपने ही किया और अब तक आप इस क्षेत्र के एक प्रमुख व्यक्ति हैं। प्रसन्नता की बात है कि आपकी

* इस ग्रंथ का नवीन संस्करण 'हिंदी साहित्य' और 'हिंदी भाषा' अलग अलग दो खंडों में प्रकाशित हुआ है और 'हिंदी साहित्य' खंड तो अत्यंत परिवर्धित एवं परिपूर्ण रूप में।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

दिखाई दिशा में काम करनेवाले अनेक विद्वान् इस समय हिंदी में वर्तमान हैं जिन्हें आप अपनी रचनाओं में तथा व्यक्तिगत रीति से भी प्रेरणा करते रहते हैं। काशी-विश्वविद्यालय हिंदी शिक्षा का प्रधान केंद्र हो रहा है और वहाँ के शिक्षा प्राप्त अनेक नवयुवक हिंदी के क्षेत्र में गौरवपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इसका अधिकांश श्रेय बाबू साहब को ही प्राप्त है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के द्वारा भाषा-संस्कार का जैसा युग-परिवर्तनकारी उद्योग किया, वैसा ही उद्योग बाबू साहब ने साहित्य-संस्कार का किया है और ये ही दोनों महानुभाव वर्तमान हिंदी-साहित्य की उज्ज्वल तथा श्रेयःकारिणी विभूतियाँ हैं।

जिस समय प्रयाग की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का जन्म हुआ उस समय हिंदी में उच्च कोटि की विशुद्ध साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रायः सर्वथा अभाव था। संपादक-प्रवर पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी के संपादकत्व में 'सरस्वती' ने हिंदी-साहित्य की प्रगति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। उस समय खड़ी बोली हिंदी-गद्य की सर्वमान्य रूप से और पद्य की आंशिक रूप से भाषा बन चुकी थी, परंतु अभी तक उसके संस्कार का प्रयत्न नहीं प्रारंभ हुआ था। द्विवेदीजी के समान व्याकरणविद् और प्रामाणिक विद्वान् के हाथों में जाकर 'सरस्वती' ने भाषा-संस्कार का महान् कार्य संपादन किया। यह पहले ही कहा जा चुका है कि द्विवेदीजी ने खड़ी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

बोली को हिंदी-पद्य में प्रतिष्ठित करने में कितना अधिक कार्य किया है। परंतु हिंदी-गद्य की भाषा को परिमार्जित करने का गौरवमय श्रेय भी द्विवेदीजी को ही है। उन्होंने भाषा को काट-छाँटकर सुसंस्कृत बनाया, व्याकरण के नियमों की प्रतिष्ठा की, सैकड़ों नवीन लेखकों को प्रोत्साहन दिया और पाश्चात्य सभ्यता के प्रेमी सैकड़ों नवयुवकों को अँगरेजी की ओर से हटा-कर हिंदी की ओर आकर्षित किया। हिंदी-साहित्य के अनेकों वर्त्तमान सुप्रसिद्ध लेखक और कवि 'सरस्वती' की ही गोद में पलकर बड़े हुए। उन्होंने द्विवेदीजी से ही साहित्य की प्रथम दीक्षा ग्रहण की थी। द्विवेदीजी की लेखन-शैली मध्य श्रेणी की है। उसमें न तो संस्कृत शब्दों का बाहुल्य होता है और न उर्दू शब्दों की प्रचुरता। उनकी भाषा संस्कृत मिश्रित होती है, परंतु उसमें आवश्यकतानुसार उर्दू शब्दों का भी यथोचित समावेश होता है।

सारांश यह कि 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन और काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना के उपरांत हिंदी गद्य की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी। भाषा में प्रौढ़ता और शक्ति आई तथा कितनी ही सुंदर शैलियों का आविर्भाव हुआ। जिस प्रकार उर्दू में लखनऊ और देहली के दो केंद्र माने जाते थे, और उनकी अलग अलग शैली चली थी, उस प्रकार हिंदी में स्थानभेद के अनुसार शैलीभेद तो नहीं हुआ पर व्यक्तिगत कितनी ही शैलियाँ निकलीं जो आगे चलकर वर्गबद्ध शैलियाँ बन गईं। स्थान का भी प्रभाव पड़ा। काशी के अधिकांश

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

लेखक संस्कृत-प्रधान भाषा लिखते हैं। कानपुर और लखनऊ के साहित्यिकों पर द्विवेदीजी की भाषा का प्रभाव पड़ा है। प्रयाग में दोनों श्रेणियों के लेखक मिलते हैं। देहली केंद्र के लेखकों में पंडित पद्मसिंह शर्मा अपनी चटपटी शैली के लिये प्रसिद्ध हैं। हास्यविनोद, वहस-मुबाहसा, व्यंग्य, व्याख्यान आदि के उपयुक्त कितनी ही शैलियों का आविर्भाव हुआ और हो रहा है। अँगरेजी के विद्वानों के हिंदी की ओर झुकने के कारण अँगरेजी रचनाप्रणाली का प्रभाव भी विशेष पड़ा। इस प्रकार हिंदी में कितनी ही शैलियों का जन्म और विकास हुआ। मासिक पत्रिकाओं के निकलने से सामयिक साहित्य की अच्छी श्रीवृद्धि हुई। राजनीतिक आंदोलन के फल-स्वरूप हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का उद्योग किया जा रहा है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने हिंदी के प्रचार में अच्छा योग दिया। राजनीतिक आंदोलन और शिक्षा की उन्नति के साथ ही पत्र-पत्रिकाएँ बढ़ती जा रही हैं। साहित्य के सब अंग भर रहे हैं। विश्वविद्यालयों में हिंदी उच्चतम कक्षाओं में पढ़ाई जाने लगी है। विविध विषयों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से ही साहित्यिक समालोचना होने लगी थी, पर पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय से उसका स्वरूप निश्चित हुआ। द्विवेदीजी की समालोचनाएँ अधिकांश निर्णयात्मक होती थीं। 'सरास्वती' में पुस्तकों की भी और संस्कृत तथा हिंदी के

समालोचना

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

कुछ कवियों की भी समालोचनाएँ द्विवेदीजी ने लिखीं। द्विवेदीजी की चलाई हुई पुस्तक-समीक्षा की संक्षिप्त प्रणाली का अनुसरण अब तक मासिक पत्रिकाओं में हो रहा है। द्विवेदीजी की समालोचनाएँ भाषा की गड़बड़ी को दूर करने में बहुत सहायक हुईं, साथ ही आलोचना में संयत होकर लिखने का ढंग भी प्रतिष्ठित हुआ। द्विवेदीजी के समकालीन समालोचकों में मिश्रबंधुओं का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। उनका हिंदी-साहित्य का इतिहास ग्रंथ अपने ढंग की पहली रचना होने के कारण बड़ी मूल्यवान् वस्तु हुई। हिंदी-नवरत्न में कवियों की समालोचना का सूत्रपात हुआ। उनकी आलोचनाओं के संबंध में विद्वानों में मतभेद हो सकता है और है भी, पर समालोचना का कार्य आरंभ करने के कारण मिश्रबंधुओं का हिंदी साहित्य पर ऋण है और उसे स्वीकार न करना कृतघ्नता माना जायगा। यह सच है कि अनेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टि-कोणों से उनके हिंदी नवरत्न तथा मिश्रबंधुविनोद की आलोचना, की पर मतभेद का होना जीवन का लक्षण और उन्नति का सूचक है और इसलिये हम उसका स्वागत करते हैं। इस बात का बिना ध्यान रखे कि सब बातों में क्रमिक विकास होता है, पूर्व कृतियों को तुच्छ मानना जहाँ अनुचित है वहाँ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे ज्ञान तथा अनुभव की वृद्धि निरंतर होती रहती है, इसलिये साहित्य के विद्यार्थियों, समालोचकों तथा निर्माताओं का अपने अपने मतों

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

को वेदवाक्य मान बैठना, नवाविष्कृत तथ्यों की अवहेलन करना तथा भिन्न मत रखनेवालों को हेय समझना साहित्य के भावी विकास और उन्नति के लिए हितकर न सिद्ध होगा।

मिश्रबंधुओं के उपरांत हिंदी के कवियों पर आलोचनात्मक लेख और पुस्तकें लिखनेवालों में पंडित पद्मसिंह शर्मा और पंडित कृष्णविहारी मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। मिश्रजी की भाषा शर्माजी की भाषा से अधिक साधु और शिष्ट है और उनकी विवेचन-पद्धति भी अधिक गंभीर है। शर्माजी की समालोचनाशैली बड़ी ही व्यंग्यमयी हो गई है और उसमें कवियों की प्रशंसा में वाह वाह कहने का उर्दू ढंग पकड़ा गया है। यदि शर्माजी कुछ अधिक गंभीरता और शिष्टता साथ लिए रहते तो अच्छा होता। कदाचित् उनकी उछलती, कूदती, फुदकती हुई भाषाशैली के लिए यह संभव न था।

अँगरेजी ढंग की गंभीर आलोचनाएँ लिखनेवालों में राय बहादुर श्यामसुंदरदास और पंडित रामचंद्र शुक्ल प्रमुख हैं। समालोचना संबंधी सिद्धांतों का निरूपण करने और हिंदी भाषा के स्वरूप से परिचय कराने में बाबू साहब ने स्तुत्य उद्योग किया है। जायसी, तुलसी, सूर आदि कवियों पर शुक्लजी के निबंध सुंदर विश्लेषणात्मक आलोचना के रूप से लिखे गए हैं, जिनसे कवियों के मानसिक और कलात्मक विकास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। विश्वविद्यालयों की उच्च श्रेणियों में पढ़ाई जाने योग्य समालोचनाओं में शुक्लजी की समालोचनाएँ

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हुई हैं। बाबू पदुमलाल बख्शी ने भी दो एक समालोचनात्मक पुस्तकें लिखकर हिंदी के विकासक्रम को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। मासिक पत्रिकाओं में समालोचनाएँ लिखने का ढंग अधिक उपयुक्त और प्रशंसनीय होता जा रहा है। पहले की अपेक्षा व्यक्तिगत आक्षेपों की बहुत कुछ कमी हो गई है। कदाचित् यह कह देना अनुचित न होगा कि समालोचना का काम बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसे सफलतापूर्वक करना सबका काम नहीं है।

अन्य सभी साहित्यों में नाटकों का विवेचन रंगशाला के नियमों तथा प्रतिबंधों आदि को लेकर होता है। अँगरेजी के अनेक विद्वान् समालोचक तो रंगशाला के

नाटक

अनुपयुक्त नाटकों को नाटक कहते ही नहीं। उन देशों में रंगशालाएँ बहुत अधिक विकसित हो चुकी हैं, और प्रत्येक नाटककार उनके नवीनतम विकास से परिचित होना आवश्यक समझता है। नवीन विकास के कारण जो पुरानी नाटकीय रचनाएँ आधुनिक रंगमंच के अनुपयुक्त हो गई हैं, अथवा पिछड़ी हुई देख पड़ने लगी हैं, उनको निम्न स्थान दिया जाता है। स्वयं शेक्सपियर के नाटक भी रंगमंच की दृष्टि से पुराने हो गए हैं अतः कम खेले जाते हैं, अथवा सुधारकर खेले जाते हैं। हिंदी के लिये यह बड़ी लज्जा की बात है कि अब तक वह पारसी रंगमंच के हाथों में पड़ी है, उसकी अपनी रंगशालाएँ या तो हैं ही नहीं, अथवा मृतक सी हैं। व्यावसायिक

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

रंगमंच तो हिंदी में कदाचित् एक भी नहीं। हम लोग अब तक नाटक खेलने को तुच्छ नटों का काम समझते हैं। अनेक आधुनिक नाटककार घर पर कल्पना के द्वारा नाटकीय प्रतिबंधों पर विचार करते हैं, रंगशालाओं में जाकर नाटक देखकर या खेलकर अपने अनुभव की वृद्धि नहीं कर पाते। पारसी रंगमंच अपने पुराने अवगुणों को लिए हुए चला जा रहा है। वही अलंकरणाधिक्य, वही अस्वाभाविक भाषा और वही अस्वाभाविक भाषण! हिंदी की जो दो एक नाटकमंडलियाँ हैं, वे तिथि-त्योहारों पर कुछ खेल खेलाकर ही संतोष कर लेती हैं। यह स्थिति बड़ी ही शोचनीय है। बँगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के रंगमंच विशेष उन्नत हैं और प्रतिदिन उन्नति करते जाते हैं। ऐसी अवस्था में राष्ट्रभाषा हिंदी पर गर्व करनेवालों का मस्तक अवश्य नीचा होता है। हिंदीभाषी रईसों को चाहिए कि यथासंभव शीघ्र नाट्यमंडलियों को सहायता दें और हिंदीभाषी विद्वानों को चाहिए कि वे यथासंभव शीघ्र अभिनय कार्य को अपने हाथ में लें, उसे नटों का काम ही न समझ रहें। साथ ही हिंदीभाषी जनता को चाहिए कि वह हिंदी नाट्यमंडलियों के नाटक देखकर उन्हें प्रोत्साहन दे। लाला सीताराम ने कई संस्कृत नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया था और पंडित सत्यनारायण ने भवभूति के दो नाटकों का हिंदी में अच्छा अनुवाद किया था।

आधुनिक नाटककारों में बाबू जयशंकर प्रसाद, पंडित बदरीनाथ भट्ट, पंडित गोविंदवल्लभ पंत आदि प्रसिद्ध हैं। बाबू

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

प्रेमचंदजी ने "संग्राम" और "कर्बला" नाम के दो नाटक लिखे हैं जिनमें उन्हें सफलता नहीं हुई। पंडित गोविंदवल्लभ पंत को रंगमंच का अच्छा अनुभव है और उनकी "वरमाला" हिंदी नाटकों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। पौराणिक आधार पर लिखी गई प्रेम की वह कथा पंतजी की कवित्वशक्ति से चमक उठी है और नाटक के उपयुक्त हो गई है। पंडित बदरीनाथ भट्ट के नाटक व्यंग्य और विनोद की दृष्टि से हिंदी में अपने ढंग के अच्छे हैं, पर जहाँ व्यंग्य और विनोद नहीं है वहाँ का कथोपकथन शिथिल और उखड़ा हुआ जान पड़ता है और कहीं कहीं हास्य और विनोद भी निम्न श्रेणी का हो गया है। कुछ दिनों तक श्रीवास्तवजी के प्रहसनों की बड़ी धूम थी, पर हमारी दृष्टि में वे कुरुचि उत्पन्न करनेवाले हैं और उनका प्रभाव नवयुवकों पर अच्छा नहीं पड़ता। बाबू जयशंकर प्रसाद ने आठ-दस नाटक लिखे, उनमें से अधिकांश ऐतिहासिक हैं। प्रसादजी ने प्राचीन इतिहास का अच्छा अध्ययन किया था और प्राचीन भारतीय समाज के भूले हुए चित्रों को दिखाने में उनकी क्षमता प्रशंसनीय है। देश और काल के उपयुक्त वस्तु निर्माण करना प्रसादजी की विशेषता है। मानसिक वृत्तियों को पात्रों का स्वरूप देकर लिखा हुआ उनका "कामना" नाटक हिंदी में अपने ढंग का अद्वितीय है। हमारी सम्मति में चित्तवृत्तियाँ इतनी जटिल और एक दूसरी से ऐसी अविच्छिन्न भाव से मिली हुई होती हैं कि उन्हें अलग करके दिखाने में कृत्रिमता आ ही

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

जाती है। उनका "एक घूँट" नाम का एकांकी नाटक सिद्धांत-प्रतिपादन की दृष्टि से उत्कृष्ट होने पर भी नाटकीय दृष्टि से इसी कारण उत्तम नहीं हुआ। सिद्धांतों को अग्रस्थान मिल गया है, कथोपकथन में नाटकीय प्रभाव कम रह गया है। फिर भी इतना तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि नाटकों के क्षेत्र में प्रसादजी की रचनाएँ बड़े महत्त्व की हैं, और अब तक के नाटककारों में वे सर्वश्रेष्ठ हुए हैं। प्रसादजी के नाटकों में एक बात बहुत खटकती है। वह उनकी रंगमंच पर खेले जाने की अनुपयुक्तता है। दूसरी बात जो उनकी कृतियों में खटकनेवाली है वह उनका सांसारिक बातों में एकपक्षीय ध्येय है। सांसारिक जीवन में सभी कुछ कलुषित और गर्हित नहीं है, उसका एक अंश उज्ज्वल और प्रशंसनीय भी है। प्रसादजी की रुचि पहले पक्ष की ओर अधिक देख पड़ती है। कदाचित् इसी कारण उनके नाटकों का प्रभाव अधिक स्थायी हो सकता हो; पर आनंद देने, मन बहलाने और आदर्श को ऊँचा उठाने के जो साधन हैं उनकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया है, इसलिए दूसरे अंश की उपेक्षा खटकती है। तीसरी बात उनका रहस्यमय उक्तियों का अनावश्यक प्रयोग है। इस कारण एक भाव स्पष्ट नहीं होने पाता कि दूसरा उसे अपूर्ण छोड़कर हटा देता है और फिर उसकी भी वही अवस्था होती है। इस प्रकार भाव अस्पष्ट और अपूर्ण रह जाते हैं।

"परीक्षागुरु" के उपरांत हिंदी के उपन्यासों में "चंद्रकांता" और "चंद्रकांता संतति" का नाम आता है। बाबू देवकीनंदन

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

खत्री की इस रचना का उस समय इतना अधिक स्वागत किया गया कि अब हमारे लिये वह आश्चर्य की बात हो गई है। लाखों निरक्षरों और उर्दूदाँ लोगों ने चंद्रकांता संतति पढ़ने के लिये हिंदी सीखी। चंद्रकांता के अनुसरण में हिंदी में अनेक उपन्यास लिखे गए। इनके अनंतर गहमरीजी के जासूसी उपन्यासों का युग आया। उनके अनेक उपन्यास अनुवादित हैं कुछ मौलिक भी हैं। घटनाओं की ओर बड़ा आकर्षण रहता है, चरित्र के विकास का कहीं पता नहीं रहता, भाषा भी प्रायः देहाती रहती है। इसी समय के लगभग वँगला के कुछ अच्छे उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद हुआ जिससे साहित्यिक उपन्यासों की मौलिक रचनाएँ भी होने लगीं। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने इस ओर पहले पहल प्रयत्न किया। उनकी रचनाएँ साहित्यिक हैं, पर भाषा की दृष्टि से सफल नहीं हुई हैं। गोस्वामीजी ने पचासों उपन्यास लिखे हैं और उनका थोड़ा बहुत प्रचार भी है। उनके उपन्यास अधिकांश घटनाविशिष्ट हैं, पात्रों के चरित्र-विकास की ओर कम ध्यान दिया गया है। कहीं कहीं कालदोष भी खटकता है। अँगरेजी की आधुनिक उपन्यास-समीक्षा के अनुसार गोस्वामीजी के उपन्यासों का बहुत कम साहित्यिक मूल्य है। उनका विनोद और हँसी कहीं कहीं अश्लीलता की सीमा तक पहुँच जाती है।

उपन्यास

हिंदी उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचंदजी की रचनाओं ने युगांतर उपस्थित कर दिया। हिंदीवालों ने उनके पहले मौलिक उपन्यास

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

"सेवा-सदन" का उतावली के साथ स्वागत किया और "प्रेमाश्रम" के निकलते ही वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार कहलाने लगे। सामाजिक भावों का प्रतिबिंब इनकी सफलता का मूल कारण है। रंगभूमि, कायाकल्प, प्रतिज्ञा आदि उनके कितने ही छोटे बड़े उपन्यास निकले हैं। प्रेमचंदजी ने देहाती समाज का अच्छा अनुभव प्राप्त किया था और उनके सुख-दुःखों को वे समझते थे। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उद्देश्य से उन्होंने व्यंग्यशैली स्वीकृत नहीं की, मीठी चुटकियों का प्रयोग किया है। मानसिक वृत्तियों के उत्थान-पतन का सुंदर चित्र अंकित करने में प्रेमचंदजी की प्रसिद्धि है। वर्णन की अपूर्व शक्ति प्रेमचंदजी को मिली है। इस कार्य में वे संसार के बड़े बड़े उपन्यासकारों के समकक्ष हैं। प्रेमचंदजी के उपन्यासों में आदर्शवाद की ओर अधिक ध्यान दिया गया, तथ्यवाद का उतना विचार नहीं रखा गया। दोनों का उपयुक्त सम्मिश्रण कदाचित् उनके उपन्यासों के महत्त्व को और भी बढ़ा देता। कहीं कहीं विशेषकर रंगभूमि में आवश्यकता से अधिक विस्तार किया गया है। यह उपन्यास दो भागों में न होकर एक ही भाग में समाप्त हो जाता तो अधिक रुचिकर होता। दूसरा भाग तो जबरदस्ती बढ़ाया गया जान पड़ता है।

जयशंकर प्रसादजी ने भी कंकाल और तितली नाम के दो उपन्यास लिखे। "कंकाल" नामक उपन्यास का निर्माण उसके नाम के अनुकूल हुआ है। समस्त उपन्यास के पढ़ जाने पर हमें उसके समाज के नंगे चित्र का उद्घाटन रुचिकर नहीं हुआ।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

चरित्रचित्रण में प्रसादजी ने अच्छा कौशल दिखाया है। इनमें मंगलदेव और यमुना (तारा) के चित्र बड़ी निपुणता से चित्रित किए गए हैं। पढ़ते पढ़ते एक के प्रति आंतरिक घृणा और दूसरी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। एक यदि रँगा हुआ सियार है तो दूसरी युवावस्था के उद्वेग से मार्गच्युत होकर जन्म भर आत्म-संयम से काम लेकर अपने निर्दिष्ट प्रण पर दृढ़ रहनेवाली है। तितली भी कंकाल की तरह सामाजिक उपन्यास है, परंतु इसमें कंकाल की तरह समाज के कलुषित पक्ष का एकांगी चित्रण नहीं है। अतः यह अधिक सुरुचिपूर्ण हुआ है। तितली के चरित्र का इसमें अच्छा उत्कर्ष दिखाया गया है।

आधुनिक हिंदी की आख्यायिकाएँ संस्कृत के हितोपदेश अथवा राजतरंगिणी के ढंग पर नहीं लिखी गईं, अँगरेजी की छोटी कहानियों की शैली पर लिखी गई हैं।

आख्यायिका

घटनाओं की सहायता से पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं को चित्रित करना आजकल की कहानियों का मुख्य लक्ष्य हो रहा है। समाज की कुरीतियों के प्रदर्शनार्थ भी कहानियाँ लिखी जाती हैं, ऐतिहासिक तत्त्वों पर प्रकाश डालने की दृष्टि से भी कहानियाँ लिखी जाती हैं, और दार्शनिक कहानियाँ भी लिखी जाती हैं। कहानियों में न तो घटनाओं का क्रम अधिक जटिल होता है और न जीवन के बड़े बड़े चित्र दिखाए जाते हैं। हिंदी में आख्यायिकाओं का आरंभ करनेवाले गिरिजाकुमार घोष नामक सज्जन थे। उनके उपरांत

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

बाबू जयशंकर प्रसाद, श्री ज्वालादत्त शर्मा, श्री प्रेमचंदजी, कौशिकजी, सुदर्शनजी, हृदयेशजी आदि कहानी-लेखक हुए। प्रसादजी की आख्यायिकाएँ कवित्वपूर्ण हुई हैं, उन्हें एक बार पढ़कर कई बार पढ़ने की इच्छा होती है। उनकी कुछ कहानियों में प्राचीन इतिहास की खोई हुई बातों की खोज की गई है, कुछ में मनस्तत्त्व की सूक्ष्म समस्याएँ समझाई गई हैं और कुछ में व्यक्ति का व्यक्तित्व स्पष्ट किया गया है। प्रेमचंदजी की कहानियों में सामाजिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। उनकी भाषा-शैली कहानियों के बहुत उपयुक्त हुई है, और उनके विचार भी सब पढ़े-लिखे लोगों के विचारों से मिलते-जुलते हैं। यही कारण है कि प्रेमचंदजी की कहानियाँ सबसे अधिक लोकप्रिय हुई हैं। प्रेमचंदजी और जयशंकरप्रसादजी की आख्यायिकाओं में पड़ा भारी अंतर यह है कि एक में घटनाओं की प्रधानता रहती है और दूसरी में भावों की। प्रेमचंदजी के भाव घटनाओं के आश्रित रहते हैं और जयशंकरप्रसादजी की घटनाएँ भावों के आश्रित रहती हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि एक घटनात्मक हैं और दूसरी भावात्मक हैं। कौशिकजी की कहानियों में पारिवारिक जीवन के बड़े ही मार्मिक और सच्चे चित्र हैं। उनका क्षेत्र सीमित है, पर अपनी सीमा के भीतर वे अद्वितीय हैं। ऐसा जान पड़ता है कि सुदर्शनजी ने पाश्चात्य कथा-साहित्य का अच्छा अध्ययन किया है। भारतीय आदर्शों की रक्षा करने की उनकी चेष्टा प्रशंसनीय है। हृदयेशजी की कहानियों में कवित्व है पर उनकी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

भाषा अत्यधिक अलंकृत तथा उनके भाव कहीं कहीं नितांत कल्पित हो गए हैं। उनकी कल्पना में वास्तविकता कम मिलती है। अन्य कहानी-लेखकों में "अंतस्तल" के लेखक श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री राय कृष्णदास, श्री विनोदशंकर व्यास आदि हैं। उग्रजी की वे कहानियाँ अच्छी हैं जिनमें उन्होंने अश्लीलता नहीं आने दी है। उनकी भाषा बड़ी सुंदर होती है। हिंदी की छोटी कहानियों या गल्पों का भविष्य बड़ा उज्ज्वल जान पड़ता है, थोड़े ही समय में इस क्षेत्र में बड़ी उन्नति हुई है।

निबंध

हिंदी में अब तक निबंधों का युग नहीं आया है। समालोचनात्मक निबंधों के अतिरिक्त हिंदी के अन्य सभी निबंध साधारण कोटि के हैं। पंडित बालकृष्ण भट्ट और पंडित प्रतापनारायण मिश्र के निबंध हिंदी की बील्यावस्था के हैं। उनमें विनोद आदि चाहे जो कुछ हो, वे साहित्य की स्थायी संपत्ति नहीं हो सकते। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के निबंधों में विचारों की योजना कहीं कहीं विशृंखल हो गई है। द्विवेदीजी को संपादन कार्य में इतना व्यस्त रहना पड़ता था कि उनके स्वतंत्र निबंधों को देखकर हमें आश्चर्य ही होता है। भावात्मक निबंध लिखनेवालों में सरदार पूर्णसिंह का स्थान सबसे अधिक महत्त्व का है। श्रीयुत गुलाबराय और श्रीयुत कन्नोमल के दार्शनिक निबंध भी साधारणतः अच्छे हुए हैं। निबंधों के क्षेत्र में पंडित रामचंद्र शुक्ल का सबसे अलग स्थान है। मानसिक विश्लेषण के आधार पर उन्होंने करुणा, क्रोध आदि मनोवेगों

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पर अनेक अच्छे ग्रंथ लिखे हैं। विवरणात्मक निबंधलेखकों ने यात्रा, भ्रमण आदि पर जो कुछ लिखा है, वह सब मध्यम श्रेणी का है। सारांश यह कि निबंधों की ओर अभी विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। हिंदी साहित्य के इस अंग की पुष्टि की ओर सुलेखकों का ध्यान जाना चहिए।

पत्र-पत्रिकाएँ

हिंदी की उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रकाओं में सबसे पहले प्रयाग में सरस्वती प्रकाशित हुई। प्रथम वर्ष में इसके संपादन का भार काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के पाँच सभासदों के हाथ में रहा। द्वितीय और तृतीय वर्ष में इसका संपादन बाबू श्यामसुंदरदास करते रहे। चौथे वर्ष से इसके संपादन का भार संपादक-प्रवर पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के हाथ में गया और बीस वर्षों से अधिक काल तक वे इस कार्य को करते रहे। उनके समय में इस पत्रिका ने बड़ी उन्नति की और हिंदी भाषा तथा साहित्य के हित-साधन में सफल हुई। सरस्वती के अनंतर माधुरी, तब सुधा, बिशालभारत और वीणा आदि मासिक पत्रिकाएँ निकलने लगीं और अब तक निकल रही हैं। इन सब ने भी हिंदी की अच्छी सेवा की और अब तक ये उस कार्य को निरंतर कर रही हैं। ये ही हिंदी की इस समय प्रमुख मासिक पत्रिकाएं हैं जो बराबर चल रही हैं। त्रयमासिक पत्रिकाओं में नागरी प्रचारिणी पत्रिका प्रमुख है जिसमें प्राचीन शोध-संबंधी लेख मुख्यतया रहते हैं। इस विषय की यह हिंदी में एक ही पत्रिका

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

है और काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की मुख-पत्रिका होने पर भी वह उस संख्या के कार्यों की सूचना देने ही की ओर उतना ध्यान नहीं देती और न वाद-विवाद में ही पड़ती है। इधर कुछ दिनों से कहानी-मासिक पत्रिकाएँ अधिक संख्या में निकलने लगी हैं। इनमें प्रायः अधिकतर कुरुचिपूर्ण और साधारण कोटि की कहानियाँ रहती हैं। माया, रसीली कहानियाँ; कहानियाँ आदि कुछ ऐसी भी पत्रिकाएँ हैं। थोड़े दिनों से इसी प्रकार की एक पत्रिका मंजरी भी निकल रही है। अभी तक तो इसमें प्रकाशित कहानियाँ एवं कथाकहानी साहित्य संबंधी लेख अच्छे निकले हैं। साहित्य का समाज पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। कुरुचि को सुरुचि में परिवर्तित करने का ध्यान लेखकों एवं प्रकाशकों को रखना चाहिए।

ऊपर उन मासिक पत्रिकाओं की चर्चा की गई है जो अब भी वर्तमान हैं और हिंदी के उन्नयन में सहायक हो रही हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पत्रिकाएँ भी समय समय पर निकलीं और वर्षों तक चलने के बाद बंद हुईं। उनकी हिंदी-सेवा भी उल्लेख योग्य है। हरिश्चंद्रजी के उद्योग से जो सामयिक पत्रिकाएँ हुईं और उनके सम-सामयिक साहित्यिकों ने जिनका संचालन किया उनमें हरिश्चंद्रचंद्रिका, हरिश्चंद्र मेगजीन; आनंद कादंबिनी, हिंदी-प्रदीप, ब्राह्मण आदि प्रख्यात पात्रों का विवरण प्रासंगिक स्थानों पर दिया जा चुका है। इन पात्रों ने हिंदी की विविध रूपों से सेवा की। इनमें सरल मनोरंजक चुटकुलों से लेकर

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

क्लिष्ट संस्कृतगर्भित वाक्य समुच्चय व्यवहार में लाए जाते थे और निबंध, कविता, नाटक, यात्रा-विवरण आदि साहित्यिक अंगों का समावेश किया जाता था। रोचकता, सतर्कता और उत्साह इन पत्रों की विशेषता थी। लगभग इसी समय श्री राधाचरण गोस्वामीजी का 'भारतेंदु' प्रकाशित हुआ था। इसके कुछ काल उपरांत जब श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका सरस्वती अपनी विविध विषय की साज-सज्जा के साथ प्रतिष्ठित हो गई तब कुछ और भी पत्रिकाएँ मुख्यतः उसी के अनुकरण में किंतु उसकी रीति-नीति का विरोध करने के लिये निकलीं। इनमें 'मर्यादा' 'सरस्वती' की साहित्यिक आलोचना और भाषा-संबंधी विचारों से अपना मतभेद प्रकट करती रही। 'प्रभा' किसान और देश की सामान्य जनता का अधिक हित-साधन करने के उद्देश्य से राजनीतिक पत्रिका के रूप में निकली किंतु उसमें कविता की एक नवीन धारा की अवतारणा भी देखी गई। यही धारा कुछ समय के उपरांत छायावाद नाम धारण करके प्रचलित हुई। काशी के तत्कालीन 'इंदु' में भी कविता की कुछ असामान्य किरणें झलकीं। मध्यप्रदेश की 'श्रीशारदा' और बिहार की 'लक्ष्मी', जिसके संपादक स्वर्गीय लाला भगवानदीन थे, कुछ दिनों अच्छी चली। हाल में 'त्यागभूमि' नामक एक मासिक पत्रिका अजमेर से निकलकर बंद हो गई। यह अपने सरल रूप और लोक-हितैषी उद्देश्यों के कारण प्रसिद्ध थी।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

दैनिक अथवा साप्ताहिक पत्रों में भी, जिन्हें समाचार-पत्र कहना ही अधिक संगत है, साहित्यिक सामग्री देने के कारण 'भारतमित्र' सबसे पहले प्रसिद्ध हुआ। बाबू बालमुकुंद गुप्त के समय में इस पत्र में मनोरंजक और तथ्यपूर्ण साहित्यिक टिप्पणियाँ छपती रहीं। भारतमित्र के उपरांत हिंदी के वर्तमान पत्रों में कानपुर का 'प्रताप' अधिक ख्याति-संपन्न हुआ। इसकी भाषा इसके संपादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी की तेजस्वी प्रकृति के प्रभाव से शक्तिशाली थी। मध्यप्रदेश का राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र 'कर्मवीर' नवीन साहित्य का पक्षपाती रहा है। गोरखपुर के 'स्वदेश' को कुछ दिनों नवीन लेखकों का अच्छा सहयोग प्राप्त रहा। कलकत्ते का प्रसिद्ध मनोरंजनप्रिय 'मतवाला' अपनी कोटि का एक ही पत्र निकला। प्रयाग से 'भारत' नामक अर्द्ध साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ, जिसके आलोचनात्मक साहित्यिक लेखों से सामाजिक साहित्य पर कुछ दिनों तक अच्छा प्रकाश पड़ा था। इसके अतिरिक्त आज, लोकमत, आर्यमित्र, चाँद, हिंदूपंच, पाक्षिक जागरण, वाणी, विश्वमित्र आदि पत्र-पत्रिकाएँ अपने अपने उद्देश की पूर्ति करती हुई हिंदी-साहित्य की भी सेवा कर सकी हैं। बहुत से पत्र और भी हैं जिनका नामोल्लेख स्थानाभाव के कारण नहीं किया जा सकता किंतु जिनसे हिंदी अच्छी मात्रा में उपकृत हुई है। ये सब हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं।

यों तो गद्य का विकास बहुत प्राचीन काल में हुआ था, परंतु तारतम्य उस समय से आरंभ हुआ जिस समय मुंशी सदासुख-

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

लाल, इंशाउल्लाखाँ, सदल मिश्र और लल्लूजीलाल ने अपनी रचनाएँ कीं। उस समय की शैली की अवस्था वही थी जो वस्तुतः आरंभिक काल में होनी चाहिए। जिन लोगों ने वस्तु का आधार संस्कृत से लिया, उनकी भाषा में भी संस्कृत की छाप लग गई। इस काल में कथा-कहानी की ही रचनाएँ हुईं। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि यह आरंभिक काल था। न तो भाषाशैली में बल का संचार हुआ, न उसका कोई संयत रूप स्थिर हुआ और न पाठकों में इतनी शक्ति उत्पन्न हुई थी कि गवेषणात्मक रचनाओं का अध्ययन कर सकें। इन लेखकों में भी दो दल स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। एक ने तो संभवतः प्रतिज्ञा कर ली कि उर्दूपन—उर्दू ढंग की वाक्य-रचना एवं शब्द-योजना—का पूर्ण बहिष्कार किया जाय; और दूसरे ने उर्दूपन लेकर शैली को चमत्कारपूर्ण बनाने की चेष्टा की। अभी तक न तो शब्दों का रूप ही स्थिर हुआ था और न भाषा का परिमार्जन ही हो सका था। व्याकरण की ओर तो आँख उठाना ही अस्वाभाविक या अनावश्यक ज्ञात होता था। मुहावरों के प्रयोग से कुछ चमत्कार अवश्य उत्पन्न हो रहा था। जिन लोगों ने मुहावरों और उर्दूपन का एकदम बहिष्कार किया उनकी भाषा गंभीर भले ही रही हो परंतु उसका आकर्षण और चमत्कार अवश्य नष्ट हो गया था। इस समय के प्रायः सभी लेखकों में प्रांतीयता स्पष्ट झलकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि यह आरंभिक काल था तो वे सभी अवस्थाएँ रचनाशैली

गद्य-शैली का विकास

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

में उपस्थित थीं जो स्वाभाविक रूप में उस समय होनी चाहिए थीं।

इसके उपरांत लगभग पचास वर्षों तक हिंदी का कार्य भारतवर्ष के धर्म-प्रचारक ईसाइयों के हाथ में था। उस समय की रचनाओं को देखने से विदित होता है कि इन ईसाइयों ने उर्दूपन का घोर विरोध किया और सभी रचनाओं में पूर्ण रूप से हिंदीपन का ही निर्वाह किया। न तो शब्द-योजना ही में उर्दूपन दिखाई पड़ता है और न वाक्य-विन्यास ही में। आवश्यकता पड़ने पर इन लोगों ने ग्रामीण शब्दों तक का व्यवहार किया परंतु उर्दू के शब्दों का नहीं। यह स्पष्ट विदित होता है कि इन लोगों ने सचेष्ट होकर, उर्दूपन को दूर रखकर, भाषा का रूप शुद्ध रखा।

इधर राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के गद्य-क्षेत्र में आते ही पुनः हिंदी और उर्दू का द्वंद्व आरंभ हुआ। साधारण रूप से विचार करने पर तो यही कहा जा सकता है कि उस समय तक न तो व्याकरण के नियमों का ही निर्वाह दिखाई पड़ता था और न भाषा का ही कोई रूप स्थिर हो सका था। रचना का विकास अवश्य हो रहा था, पठन-पाठन के विस्तार से अनेक विषयों में गद्य की पहुँच आरंभ हो गई थी, और कितने ही विषयों पर पुस्तकें लिखी जा रही थीं। हिंदी-गद्य का रूप कुछ व्यापक अवश्य हो रहा था। उसमें अब भाव-द्योतन का क्रमशः विकास होने लगा था। इस समय प्रधान बात हिंदी-उर्दू का झगड़ा

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

था। राजा शिवप्रसाद को सभी रचनाओं में उर्दूपन घुसेड़ने की धुन समाई थी। उनको विश्वास था—संभव है, ऐसा विश्वास करने के लिये वे बाध्य किए गए हों—कि यदि उर्दूपन का बहिष्कार किया जायगा तो भाषा की व्यावहारिकता नष्ट हो जायगी और उसमें भाव-द्योतन का चमत्कार और बल न आ सकेगा। यह विचार राजा लक्ष्मणसिंह को ठीक न जँचा। अतः उन्होंने इसके विरोध में अपनी रचनाओं में भाषा का रूप पूर्ण शुद्ध ही रखा। ऐसा करके उन्होंने यह स्पष्ट दिखा दिया कि उर्दूपन से दूर रह कर भी भाव बड़ी सरसता से प्रकाशित किए जा सकते हैं, ऐसी अवस्था में भी चमत्कार उपस्थित किया जा सकता है, बिना उर्दूपन का सहारा लिए ही सुंदर से सुंदर रचनाएँ की जा सकती हैं।

इस द्वंद्व का निरीक्षण बाबू हरिश्चंद्र भली भाँति कर रहे थे। सोच-विचार करने के उपरांत उन्होंने मध्य मार्ग के अवलंबन का निश्चय किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में भाषा का बड़ा व्यावहारिक रूप रखा। न तो उन्होंने उर्दूपन का पूर्ण बहिष्कार ही किया और न वे उर्दू-ए-मुअल्ला के पक्षपाती ही बने। जहाँ उन्होंने उर्दू के शब्दों का व्यवहार किया वहाँ उनका तद्भव रूप ही रखा। इस काल में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थीं। हिंदी का व्यवहार-क्षेत्र अब अधिक व्यापक होने लगा था। भारतेंदुजी के अनेक सहयोगी तैयार हो गए थे। वे सभी दक्ष पत्र-संपादक और लेखक थे। इन लोगों के हाथों से भाषा

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

का रूप वहुत कुछ परिमार्जित हो गया। पंडित बालकृष्ण भट्ट और पंडित प्रतापनारायण मिश्र की रचनाओं में भाव-व्यंजना की सुंदर और चमत्कारपूर्ण प्रणाली का अनुसरण हुआ। इनकी शैलियों में चलतेपन और व्यावहारिकता का बड़ा ही आकर्षक सामंजस्य उपस्थित हुआ। पंडित बदरीनारायण चौधरी और पंडित गोविंदनारायण मिश्र की लेखनी से इस प्रकार की रचनाएँ निकलीं जो इस वात की घोषणा करती थीं कि अब भाषा में किसी प्रकार केवल भाव-प्रकाशन की ही शक्ति नहीं है वरन् उसमें अलंकारिक रूप से उत्कृष्ट रचना भी की जा सकती है। इस प्रकार के लेखकों में व्यावहारिकता अवश्य नष्ट हुई है, परंतु भाषा का एक शक्तिशाली स्वरूप दिखाई पड़ा। इतना होते हुए भी सतर्क पाठक यह देख सकता है कि इस काल में भी व्याकरण की अवहेलना की गई। भाषा का मार्ग निश्चित तो हो गया, परंतु उसमें सौष्ठव अभी तक न आ सका था। इस समय भी ऐसे लेखक उपस्थित थे जो विरामादि चिन्हों का प्रयोग ही नहीं करते थे और इस कारण उनकी रचनाओं में व्यर्थ ही अस्पष्टता आ जाती थी। संक्षेप में यदि हम कहना चाहें तो कह सकते हैं कि भाव-व्यंजना की कई शैलियाँ इस समय अवश्य गद्य-क्षेत्र में उपस्थित हुईं और उनमें एक शक्तिशाली रूप अवश्य दिखाई पड़ा, परंतु भाषा का सम्यक् परिमार्जन न हो सका और व्याकरण-विहित शुद्ध रचनाएँ न की जा सकीं।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

जो कमी इस समय रह गई थी उसकी पूर्ति आधुनिक काल में हुई। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी प्रभृति लेखकों की सतर्कता ऐवं चेष्टा से व्याकरण-संबंधी त्रुटियों का सुधार हुआ। शब्दों का वास्तविक शुद्ध प्रयोग और व्यवहार इस काल की विशेषता है। इस समय अनेक विषयों पर सुंदर और पुष्ट रचनाएँ की गईं। यों तो भारतेंदु हरिश्चंद्रजी के ही काल में नाटक, उपन्यास, निबंध इत्यादि लिखने का अभ्यास हो चुका था, परंतु इन विषयों के लेखन में न तो अनेक प्रकार की शैलियों का रूप ही निश्चित हुआ था और न भली भाँति उनमें सूक्ष्म मानसिक भावनाओं के प्रकाशन की प्रणाली का ही निर्वाह हुआ था। इस काल में इन विषयों पर विशेष ध्यान दिया गया। फलस्वरूप शैली में भी भाव-द्योतन की मनोवैज्ञानिक शक्ति का संचार हो गया है। बाबू प्रेमचंद और बाबू जयशंकर प्रसाद की शैली में चरित्र-चित्रण की मननशील और गंभीर योजना इस बात की साक्षी है। क्रमशः जिस प्रकार विचार करने की शक्ति का विकास होता गया उसी प्रकार भाषा में भी भाव-व्यंजनात्मक शक्ति की उन्नति होती गई। आज जितने प्रकार की शैलियाँ उपस्थित हैं, उनसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि गूढ़ से गूढ़ भावनाओं के प्रकाशन में भाषा समर्थ है।

भाव और भाषा की तादात्म्य-प्राप्ति शैली के उत्कर्ष की परम सीमा है। लेखक इस दिशा में पदन्यास कर रहे हैं। राय कृष्णदास की साधना, प्रवाल और छायापथ, श्री वियोगी हरि की

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

भावना और अंतर्नाद श्री चतुरसेन शास्त्री के अंतस्तल में इसी प्रकार के तादात्म्य का उन्मेष स्थान-स्थान पर हुआ है।

घटनात्मक कथन की एक विशिष्ट प्रणाली का विचित्रतापूर्ण और व्यावहारिक रूप बाबू प्रेमचंद की रचनाओं में दिखाई पड़ता है। दूसरी ओर भावात्मक तथा उन्मादपूर्ण भाव-व्यंजना का एक रूप-विशेष "प्रसाद" जी की शैली में दिखाई पड़ता है। वाद-विवाद और तार्किक कथन का ओजपूर्ण रूप भी इस काल में विशेषतः प्रयुक्त होने लगा है। इस प्रकार की शैलियाँ आज देखने में आ रही हैं जिनमें भाषण के गुणों की प्रधानता रहती है। एक ही विषय को बार बार दुहराकर कहना और भावभंगी की एक विचित्रतापूर्ण और चमत्कारयुक्त शैली का अनुसरण इस युग में विशेष वृद्धि पा रहा है। यों तो इने-गिने आलोचनात्मक लेख भारतेंदु हरिश्चंद्र ही के काल में लिखे जाने लगे थे, परंतु आधुनिक काल में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की विशेष चेष्टा से इस विषय का अधिक प्रचार बढ़ा और क्रमशः इधर लोगों की प्रवृत्ति भी होने लगी। फलतः पंडित रामचंद्र शुक्ल सरीखे गौरवपूर्ण आलोचना-लेखक उपस्थित हो सके। आलोचना का जो सौष्ठवपूर्ण गंभीर विवेचन शुक्लजी ने आरंभ किया है उससे विश्वास होता है कि शीघ्र ही आलोचना की यह चमत्कारपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथा तर्कनायुक्त शैली दृढ़ होकर एक विशेष रूप स्थिर करेगी। तुलनात्मक आलोचना की शैली का आरंभ पंडित पद्मसिंह शर्मा ने किया।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वह वस्तुतः एक नई चीज थी। पंडित कृष्णविहारी मिश्र प्रभृति ने इस विषय को आगे बढ़ाया। शर्माजी की शैली का अनुसरण अन्य लोगों ने न किया हो, यह दूसरी बात है; परंतु यह शैली दृढ़ हो रही है। अभी तक गंभीर तुलनात्मक आलोचना पर कोई ऐसा सुंदर ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ जिसे आधार माना जा सके। इसके अतिरिक्त आज अनेक विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे जा रहे हैं। इन विविध विषयों की शैलियों के विषय में अभी अधिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे परिपक्वावस्था को नहीं प्राप्त हुई हैं।

सारांश यह कि क्या कला-पक्ष और क्या भाव-पक्ष दोनों में अभी पूर्ण परिपक्वता नहीं आई है, पर हिंदी दोनों की ओर दृढ़तापूर्वक अग्रसर हो रही है। सच बात तो यह है कि हिंदी भाषा और साहित्य का वर्तमान रूप बड़ा चमत्कारपूर्ण है। इसमें भावी उन्नति के बीज वर्तमान हैं जो समय पाकर अवश्य पल्लवित और पुष्पित होंगे। परिवर्तन-काल में जिन गुणों का सब बातों में होना स्वाभाविक है वे सब हिंदी साहित्य के विकास में स्पष्ट देख पड़ते हैं और काल का धर्म भी पूर्णतया प्रतिबिंबित हो रहा है। इस अवस्था में जीवन है, प्राण है, उत्साह है उमंग है, और सबसे बढ़कर बात यह है कि भविष्योन्नति के मार्ग पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर होने की शक्ति और कामना है। जिनमें ये गुण हैं वे अवश्य उन्नति करते हैं। हिंदी में ये गुण वर्त-

उपसंहार

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

मान हैं और उसकी उन्नति अवश्यंभावी है। हिंदी और उसके साहित्य का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल और सुंदर देख पड़ता है। आदर तथा सम्मान के पात्र वे महानुभाव हैं जो अपनी कृतियों से इसके मार्ग के कंटकों और झाग-झंखाड़ों को दूर कर उसे सुगम्य, प्रशस्त और सुरम्य बना रहे हैं।

———

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

ग्यारहवाँ अध्याय

हिंदी की व्यापकता

किसी साहित्य का काल-विशेष तक का पूर्ण इतिहास प्रस्तुत करने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि उस साहित्य में की गई समस्त मुख्य रचनाएँ प्राप्त हों, तत्पश्चात् उस सामग्री का कालानुक्रम से परितः अनुशीलन करने की आवश्यकता होती है। संपूर्ण सामग्री के प्राप्त हुए बिना अनुशीलन कितनी ही सतर्कता से किया जाय, वह अधूरा ही कहा जायगा, और उसके आधार पर जो परिणाम निकाले जायँगे, वे अपूर्ण सामग्री पर आधृत होने के कारण अपूर्ण ही होंगे। यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि हिंदी साहित्य की सामग्री अभी बहुत कुछ अधूरी है। ज्यों ज्यों खोज की जाती है, कुछ न कुछ नई सामग्री प्राप्त होती जाती है। परंतु यह खेद का विषय है कि खोज का कार्य व्यवस्थित और व्यापक रूप में नहीं हो रहा है; जो कुछ हो भी रहा है वह अत्यंत मंथर गति से। खोज का विस्तृत और व्यवस्थित कार्य काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा युक्तप्रांत में जिलों में अवश्य हुआ है और उसमें यह ध्यान देने की बात है कि सं० १९५७ से ही खोज का कार्य प्रायः निरंतर होते रहने पर भी अभी प्राचीन साहित्य का मिलना बंद नहीं हो गया है। परंतु विचार करने की

अनुशीलन

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

बात यह है कि युक्तप्रांत हिंदी का प्रधान प्रांत होने पर भी हिंदी साहित्य का क्षेत्र उसी के भीतर सीमित नहीं है। आधुनिक काल में भले ही राजनीतिक, सांप्रदायिक आदि कारणों से हिंदी साहित्य को अपने उत्पत्ति-स्थान में भी अपनी रक्षा और उन्नति के प्रयत्नों में कठिनाइयों का सामना करना पड़े, परंतु आदि और मध्यकाल में उसे संपूर्ण भारत में अपने स्वाभाविक गुणों के कारण बिना किसी प्रयत्न के ही वह प्रतिष्ठा प्राप्त थी, जो किसी समय संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश को मिली हुई थी। विभिन्न भाषाभाषी तथा विभिन्न मत और संप्रदायों के लोग निस्संकोच भाव से हिंदी में रचनाएँ करते थे। समय समय पर खोज में जो सामग्री मिलती रहती है, उससे हिंदी की इस व्यापकता की बराबर पुष्टि होती है और ऐसा अनुमान होता है कि यदि संकुचित सीमा से बाहर बढ़कर अनुसंधान और अनुशीलन का कार्य किया जाय तो हिंदी साहित्य के इतिहास के कई अपूर्ण अंशों—जैसे आदि-कालीन साहित्य तथा खड़ी बोली—के प्राचीन साहित्य पर अधिक प्रकाश पड़ सकता है।

हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के लिये प्राचीन हिंदी साहित्य को केवल अवधी या ब्रज में लिखे गए वैष्णव अथवा अलंकार साहित्य में ही ढूँढ़ना आवश्यक नहीं है।

भाषा और लिपि

इसमें संदेह नहीं कि कभी कभी ऐसा प्रश्न उठाया जाता है कि हिंदी में प्राचीन साहित्य है ही कहाँ ? जो कुछ है वह ब्रज और अवधी आदि में है। ऐसा प्रश्न करनेवाले

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

लोग केवल आधुनिक खड़ी बोली की रचनाओं को ही हिंदी साहित्य के अंतर्गत मानते हैं और ऐसा कहते समय वे साहित्य की परंपरा तथा उसके मूल में रहनेवाली शब्दकोश एवं प्रवृत्तिगत एकता की बात बिलकुल भूल जाते हैं। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से व्रज, अवधी, मैथिली, राजस्थानी, खड़ी आदि भिन्न भाषाएँ गिनी जायँ; परंतु जहाँ तक साहित्य का संबंध है, इनमें पाई जानेवाली रचनाओं की परंपरा, प्रवृत्ति एवं पदावली में इतना साम्य अवश्य है कि वे बिना विशेष कठिनाई के समझ ली जायँ, अतः उनका एक ही साहित्य के अंतर्गत गिना जाना उचित ही है। हमने इसी लिए आदिकाल के भीतर राजस्थानी कवियों तथा मिथिला के विद्यापति को भी हिंदी का ही कवि माना है इसके अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि पंजाब, महाराष्ट्र तथा अन्य प्रांतों के अहिंदी-भाषी व्यक्तियों ने भी बिना किसी भेदभाव के हिंदी में रचनाएँ कीं। साथ ही यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि हिंदी रचनाएँ प्रधानतः नागरी लिपि में होने पर भी वे फारसी और कैथी लिपि में भी यत्र-तत्र पाई जाती हैं। अतः प्राचीन हिंदी साहित्य के अनुसंधान का कार्य अन्य प्रांतों में तथा उपर्युक्त अन्य लिपियों में भी होना आवश्यक है।

जैन साधुओं और कवियों ने हिंदी साहित्य का कम उपकार नहीं किया है। विशेषतः प्राचीन हिंदी का जैनों से घनिष्ठ संबंध विदित होता है। इनमें दिगंबर जैनों की ही रचनाएँ अधिक मिलती हैं। किसी समय जैन लोगों का प्रभाव भारत

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

के सभी प्रमुख स्थानों में था। जैन साधु विद्याप्रेमी होते थे और संस्कृत, प्राकृत तथा हिंदी में भी रचनाएँ करते थे। यह

जैन साहित्य

अवश्य है कि विद्वान् और साहित्यिक होने के कारण उनकी बहुत पीछे की रचनाओं में भी परंपरागत प्राचीन शब्द-रूपों का प्रयोग अधिक पाया जाता है। पुरानी हिंदी की पहले-पहल झलक दिखलानेवाले जैन आचार्य मेरुतुंग, सोमप्रभ सूरि तथा हेमचंद्र आदि की कृतियाँ तो प्रसिद्ध ही हैं, अन्य कितने ही जैन साधुओं ने उनके पूर्व तथा उनके पश्चात् भी हिंदी में रचनाएँ कीं। बारहवीं शताब्दी के पूर्व आचार्य जिनवल्लभ सूरि ने और पद्रहवीं शताब्दी में उपाध्याय जयसागर ने हिंदी में रचनाएँ कीं। इस प्रकार १८वीं शताब्दी तक बराबर हमें हिंदी में जैन रचनाएँ मिलती हैं और जैन ग्रंथागारों में पता लगाने पर हिंदी साहित्य के अध्ययन योग्य बहुत सी सामग्री प्राप्त हो सकती है।

राजस्थान के चारण कवियों की रचनाओं की परंपरा १४वीं शताब्दी से लेकर अब तक अखंड चली आ रही है। इनमें अधि-

चारण कवियों की परंपरा

कांश की भाषा डिंगल अवश्य है, पर पिंगल में भी कम रचनाएँ नहीं हुई हैं। डिंगल और पिंगल दोनों में उच्च कोटि का चारण-साहित्य पाया जाता है। हिंदी साहित्य के आदि काल का सम्यक् अध्ययन करने के लिये तो डिंगल साहित्य का भी परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। वीररस की फड़कती हुई रच-

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

नाओं के लिये चारण-काव्य प्रसिद्ध ही है, पर उसमें अन्य रसों की कविताओं की रचना भी हुई है। मुक्तक और प्रबंध दोनों प्रकार के काव्य उसमें रचे गए हैं। नरहरिदास, माधोदास, सायाँ झूला, लौंगीदान, बारहट मुरारिदास, कविराजा करनीदान, महाकवि सूर्यमल्ल, दुरसा आढ़ा, ईश्वरदास, बाँकीदास, स्वामी गणेशपुरी तथा बारहट केसरीसिंह आदि प्रसिद्ध चारण कवियों के नाम हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा अपनी बारहट बालाबक्स राजपूत चारण-पुस्तकमाला में चारण कवियों की रचनाएँ प्रकाशित करती है और बाँकीदास-ग्रंथावली, रघुनाथरूपक, राजरूपक आदि कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ प्रकाशित भी कर चुकी है।

महाराष्ट्र का हिंदी-साहित्य

महाराष्ट्र ने हिंदी साहित्य की बहुमूल्य सेवा की है और आज भी कर रहा है। केवल महाराष्ट्रीय संतों और कवियों ने ही नहीं, वरन् राजा-महाराजाओं ने भी हिंदी में रचनाएँ की हैं। भूषण के आश्रय-दाता महाराज शिवाजी के दरबार में हिंदी के अन्य कवियों के होने का पता चलता है और यह प्रसिद्ध है कि महाराज शिवाजी स्वयं भी कुछ फुटकर पद-रचना कर लेते थे। महाराज महादजी सेंधिया और दौलतराव सेंधिया को भी हिंदी काव्य से बड़ा प्रेम था और हिंदी के कवियों का सम्मान करने के अतिरिक्त वे स्वयं भी कविता करते थे। महादजी बड़े कृष्ण-भक्त थे और उन्हें ब्रजभाषा का अच्छा ज्ञान था।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

शिवाजी के पिता शाहजी भी हिंदी कवियों को आश्रय देते थे। उनके दरबारी महाराष्ट्रीय कवि जयराम हिंदी में अच्छी रचना करते थे।

प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय संत ज्ञानदेव, उनकी बहिन मुक्ताबाई, नामदेव, भानुदास, एकनाथ, तुकाराम, श्री समर्थ रामदास आदि अनेक संतों ने मराठी में रचना करने के अतिरिक्त हिंदी में फुटकर रचनाएँ की हैं। दाद पिंजारा तथा अन्य कई मुसलमान संत भी महाराष्ट्र में हो गए हैं जिन्होंने मराठी के अतिरिक्त हिंदी में भी रचनाएँ कीं। संत तुकाराम की हिंदी-रचना बहुत अच्छी होती थी।

महाराष्ट्र से आगे बढ़कर सुदूर दक्षिण के स्थानों में हिंदी का प्रचार था और वहाँ के कवि हिंदी में रचना करते थे।

केरलपति गर्भ श्रीमान्

उधर की अधिक रचनाएँ नहीं मिली हैं, पर खोज होने पर यह असंभव नहीं है कि वहाँ भी कुछ सामग्री प्राप्त हो। केरल (ट्रावकोर) के महाराज "श्री पद्मनाभदास वंचिपाल 'श्री रामवर्मा' कुलशेखर किरीटपति" जिन्हें 'गर्भ श्रीमान्' भी कहते थे, हिंदी में सरस रचनाएँ किया करते थे। ये बड़े विद्वान्, प्रतिभाशाली तथा प्रजापालक नृपति थे। कविता में ये अपना नाम पद्मनाभ रखते थे। हिंदी में इनके रचे हुए फुटकर कीर्तन भी मिलते हैं।

'दखिनी' भाषा दक्षिण की मुसलमानी रियासतों के अधिपतियों के आश्रय में विशेष रूप से फूली फली और उसमें

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

साहित्यिक रचनाएँ हुईं। दखिनी की उपलब्ध रचनाएँ फारसी लिपि और अधिकतर फारसी छंदों में है और उर्दू साहित्य के अंतर्गत मानी जाती हैं; परंतु भाव और भाषा की दृष्टि से वे हिंदी के बहुत निकट हैं। इस बात की बहुत संभावना है कि खोज करने पर उसमें हिंदी भाषा तथा हिंदी साहित्य के अध्ययन की प्रचुर सामग्री मिले। १७वीं शती के प्राचीन कवि नजदी और १८वीं शती के कवि बहरी की रचनाएँ इस संभावना का समर्थन करती हैं।

दखिनी साहित्य

आधुनिक खड़ी बोली हिंदी के इतिहास में दखिनी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हो सकती है। हिंदी की इस व्यापकता को ध्यान में रखकर साहित्य के अनुसंधान और अनुशीलन का कार्य आगे बढ़ाना चाहिए।

———

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

हमारा नया प्रकाशन

चिन्तामणि

(पहला भाग) लेखक, आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल। इस पुस्तक में आचार्य शुक्ल ने, भिन्न भिन्न विषयों पर लिखे गये, अपने सत्रह निबंधों का संग्रह किया है। ये सभी निबंध बहुत ही गंभीर और अध्ययनपूर्ण हैं, जिनके द्वारा मनुष्य की विभिन्न प्रकार की आंतरिक भावनाओं पर आलोचनात्मक ढंग से प्रकाश डाला गया है। इस रचना पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है। मूल्य ३) तीन रुपये।

कामायनी का विवेचन

प्रसिद्ध कवि प्रसादजी के महाकाव्य 'कामायनी' को समझने में सहायता देने के लिए पंडित ब्रजभूषण शर्मा एम० ए० ने इस विवेचन को प्रस्तुत किया है। इसमें काव्य के तात्त्विक और मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को स्पष्ट किया गया है। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य १) एक रुपया।

साहित्यालोचन

इसमें संस्कृत के प्राचीन आचार्यों के साहित्य-[illegible] सिद्धान्तों के अतिरिक्त पाश्चात्य साहित्यकारों के त[illegible] मर्मज्ञों के मत का दिग्दर्शन बहुत ही मौलिक ढंग से [illegible] है। मूल्य ५॥) पाँच रुपये आठ आने।

रूपक-रहस्य

नाट्य-शास्त्र-सम्बन्धी एक उत्कृष्ट श्रेणी का ग्रंथ। [illegible] रुपये।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, [illegible]

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand